October 2026

मासिक रायबरेली

अरफ़ात किरण

उस्वा-ए-रसूल (स०अ०व०)

"इन्सानियत की कश्ती भंवर में हैं, उस पर नस्ल-ए-इन्सानी का सदियों का सरमाया है, सभ्यता व संस्कृति, साहित्य व लिट्रेचर, ज्ञान व कला सब ख़तरे में हैं, कश्ती डूब गई तो कुछ भी नहीं बचेगा, डूबने वाले समन्दरी जहाज़ों और हादसे का शिकार होने वाले हवाई जहाज़ों में पढ़े-लिखे और क़ाबिल लोग भी होते हैं और वह भी मौत के घाट उतर जाते हैं। भंवर में फंसी हुई इन्सानियत की कश्ती को बचाने की ज़रूरत है, हमारा यही पैग़ाम है।" (इन्सानियत की मसीहाईः 83)

मुफ़क्किर-ए-इस्लाम हज़रत मौलाना
सैय्यद अबुल हसन अली हसनी नदवी (रह०)

मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल नदवी
दारे अरफ़ात, तकिया कलां, रायबरेली

दावत व इस्लाह का तरीक़ा क्या हो?!

"इस्लाम दीन–ए–दावत है और दावत इस बात की तक़ाज़ा करती है कि मुख़ातिब का एहतराम मलहूज़ रखा जाए, माहौल और सूरत–ए–हाल की रिआयत की जाए, दाई को अपने पैग़ाम पर पूरा यक़ीन हो और अंदाज़–ए–ख़िताब मुख़ातिब के फ़हम के मुताबिक़ हो और उससे दोस्ती और एतमाद हासिल करने की कोशिश की जाए, इसलिए कि सख़्ती, नफ़रत और अदावत के माहौल में दावत का अमल कारगर नहीं हो सकता। इसी वजह से क़ुरआन में जगह–जगह पर मुसलमानों को सब्र, दूसरों के मज़हब और उनके जज़्बात के एहतराम और दुश्मनी व अदावत से दूर रहने की तलक़ीन की गई है:

وَٱصْبِرْ نَفْسَكَ مَعَ ٱلَّذِينَ يَدْعُونَ رَبَّهُم بِٱلْغَدَوٰةِ وَٱلْعَشِيِّ يُرِيدُونَ وَجْهَهُۥ وَلَا تَعْدُ عَيْنَاكَ عَنْهُمْ

"और जो लोग सुबह–शाम अपने रब को पुकारते हैं और उसकी ख़ुशनूदी के तालिब हैं, उनके साथ सब्र करते रहो और तुम्हारी निगाहें उनमें से (गुज़र कर और तरफ़) न दौड़ें।" (अल–कहफ़: २८)

وَٱصْبِرْ عَلَىٰ مَا يَقُولُونَ وَٱهْجُرْهُمْ هَجْرًا جَمِيلًا

"और जो दिल–आज़ार बातें ये लोग कहते हैं, उनको सहते रहो और उनसे अच्छे तरीक़े से किनारा–कशी रखो।" (अल–मुज़्ज़म्मिल: १०)

وَلَا يَجْرِمَنَّكُمْ شَنَـَٔانُ قَوْمٍ عَلَىٰٓ أَلَّا تَعْدِلُوا۟ ٱعْدِلُوا۟ هُوَ أَقْرَبُ لِلتَّقْوَىٰ وَٱتَّقُوا۟

"और लोगों की दुश्मनी तुमको इस बात पर आमादा न करे कि इंसाफ़ को छोड़ दो, इंसाफ़ किया करो कि यह परहेज़गारी की बात है।" (अल–माइदा: ८)

गुज़िश्ता अहद में इस्लामी अमल के मैदान का यह अलमिया था कि दावत के लिए और मुल्की मामलात के सिलसिले में सियासी अंदाज़ इख़्तियार किया गया, जिसकी वजह से हुक्काम, ग़ैर–इस्लामी माहौल में तालीम पाने वालों और ख़ारिजी दुनिया के दुश्मनों से टकराव पैदा हो गया। हालाँकि वही दावती तरीक़ा–ए–कार इख़्तियार करना चाहिए जिसे हमारे असलाफ़ ने इख़्तियार करके दिलों को फ़तह कर लिया था, बल्कि पूरी दुनिया पर हुकूमत की, और वह तरीक़ा मौइज़ा–ए–हसना, हुस्न–ए–अख़्लाक़, नर्मी, मुहब्बत, रवादारी और इंसानी ग़मख़्वारी का तरीक़ा है।

मौजूदा सूरत–ए–हाल में दावत व इस्लाह के मैदान में तरीक़ा–ए–कार बदलने की ज़रूरत है और जब मुख़ातिब, माहौल और वक़्त के तक़ाज़ों की रिआयत के साथ मोअस्सिर तरीक़ा–ए–कार इख़्तियार करेगा तो दुश्मन भी दोस्त बन जाएँगे। इस्लामी तारीख़ में इसकी सैकड़ों मिसालें मौजूद हैं। क़ुरआन–ए–मजीद कहता है:

ٱدْفَعْ بِٱلَّتِى هِىَ أَحْسَنُ فَإِذَا ٱلَّذِى بَيْنَكَ وَبَيْنَهُۥ عَدَٰوَةٌ كَأَنَّهُۥ وَلِىٌّ حَمِيمٌ وَمَا يُلَقَّىٰهَآ إِلَّا ٱلَّذِينَ صَبَرُوا۟ وَمَا يُلَقَّىٰهَآ إِلَّا ذُو حَظٍّ عَظِيمٍ

"सख़्त कलामी का ऐसे तरीक़े से जवाब दो जो बहुत अच्छा हो, ऐसा करने से तुम देखोगे कि जिसमें और तुममें दुश्मनी थी, गोया वह तुम्हारा गर्मजोश दोस्त है और यह उन्हीं लोगों को हासिल होती है जो बर्दाश्त करने वाले हैं और उन्हीं को नसीब होती है जो बड़े साहिब–ए–नसीब हैं।)" (फ़ुस्सिलत: ३४–३५)

(दावत–ए–इस्लामी; मसाइल, अंदेशे और तक़ाज़े: ८०–८१)

हज़रत मौलाना मुहम्मद वाज़ेह रशीद हसनी (रह०)

بِسۡمِ ٱللَّهِ ٱلرَّحۡمَٰنِ ٱلرَّحِيمِ

मासिक

अरफ़ात किरण

रायबरेली

अंक : 10 अक्टूबर २०२६ ई० वर्ष : 18

सम्पादकीय मण्डल

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी
मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी
अब्दुस्सुब्हान नाख़ुदा नदवी
मुहम्मद हसन नदवी

सह सम्पादक

मुहम्मद मक्की हसनी नदवी
मुहम्मद अमीन हसनी नदवी
मुहम्मद अरमुग़ान बदायूंनी नदवी

अनुवादक

मुहम्मद सैफ़

ख़ैर के कामों की बरकत

अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया:

"क़ाबिल-ए-मुबारकबाद है वह शख़्स जिसके हाथों अल्लाह तबारक व तआला भलाई के दरवाज़े खोले और हलाकत व तबाही है उस शख़्स के लिए जिसके हाथों अल्लाह तबारक व तआला बुराई के दरवाज़े खोले।"

सुनन इब्ने माजा: 237

E-Mail: markazulimam@gmail.com www.abulhasanalinadwi.org

मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल–नदवी दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली,यू0पी0.229001

मो० हसन नदवी ने एस० ए० आफसेट प्रिन्टर्स, मस्जिद के पीछे, फाटक अब्दुल्ला खॉ, सब्ज़ी मण्डी, स्टेशन रोड रायबरेली से छपवाकर आफिस अरफ़ात किरण,मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल–नदवी, दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली से प्रकाशित किया।

Markazul Imam Abil Hasan Al-Nadwi Samiti (Punjab National Bank) A/c No. 6127002100000339 (IFSC: PUNB0612700)

जो हो अज़्म-ए-सफ़र पैदा

जनाब इक़बाल सुहैल आज़मी (रह0)

असीरों में भी हो जाएं जो कुछ आशुफ्ता सर पैदा
अभी दीवार-ए-ज़िदां में हुआ जाता है दर पैदा

किये है चाक दिल से बू-ए-गुल ने बाल-ओ-पर पैदा
हवस है ज़िन्दगानी की तो ज़ौक़-ए-मर्ग कर पैदा

ये मुश्त-ए-ख़ाक़ अगर कर ले बाल-ओ-पर नज़र पैदा
तो औज-ए-ला मकां तक हों हज़ारों रह-गुज़र पैदा

जमाल-ए-दोस्त पिन्हां पर्दा-ए-शम्स-ओ-क़मर पैदा
यही पर्दे तो करते हैं तक़ाज़ा-ए-नज़र पैदा

मुहब्बत तेरे सदक़े तूने कर दी वह नज़र पैदा
जिधर आंखें उठीं होता है हुस्न-ए-जलवागर पैदा

शब-ए-ग़म अब मनाए ख़ैर अपने जेब-ओ-दामन की
रहे दस्त-ए-जुनूं बाक़ी तो कर लेंगे सहर पैदा

मज़ाक-ए-सर बुलन्दी हो तो फिर दैर-ओ-हरम कैसे
जबीं साई की फ़ितरत ने किये हैं संग-ए-दर पैदा

निसार उस लन तरानी के ये क्या कम है शर्फ़ उसका
दिल-ए-खुद्दार ने कर ली निगाह-ए-खुद निगर पैदा

जवानो! यह सदाएं आ रहीं हैं आबशारों से
चट्टानें चूर हो जाएं जो हो अज़्म-ए-सफ़र पैदा

वह शबनम का सुकूं हो याकि परवाने की बेताबी
अगर उड़ने की धुन होगी तो होंगे बाल-ओ-पर पैदा

सुहैल अब पूछना है इन्क़िलाब-ए-आसमानी से
हमारी शाम-ए-ग़म की भी कभी होगी सहर पैदा

इस अंक में:

पयाम–ए–इन्सानियत का पैग़ाम....................................3
बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

तक़वा क्या है?...4
बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

हिज़ानत (बच्चों का हक़्–ए–परवरिश)...............................6
मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

हज़रात अम्बिया (अलैहिस्सलाम) और दावत–ए–इन्सानियत.......8
मौलाना अब्दुस्सुब्हान नाख़ुदा नदवी

राहें दोज़ख़ की–आरज़ू जन्नत की.................................10
मौलाना नासिरुद्दीन नदवी प्रतापगढ़ी

ईवान रिडली का कुबूल–ए–इस्लाम................................12
सैय्यद मुहम्मद मक्की हसनी नदवी

इल्हाद का तूफ़ान – असबाब व इलाज.............................14
मोहम्मद नज्मुद्दीन नदवी

इन्सान कुरआन करीम की नज़र में................................16
अबुल हसन अली हसनी

दिल की सख़्ती का इलाज...18
सैफुल्लाह फ़ैज़ी नदवी

रसूलुल्लाह (स0अ0व0) और इन्सानियत साज़ी का फ़न...........19
मुहम्मद अरमग़ान बदायूनी नदवी

सम्पादकीय

पयाम-ए-इन्सानियत का पैग़ाम

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

पयाम–ए–इंसानियत की मेहनत का असल मक़सद इंसानों को इंसानियत का सबक़ याद दिलाना है। आज हम अपने आप को और अपनी ज़िम्मेदारियों को इस तरह भूल गए कि हम खुद अपने आप में उलझ कर रह गए। हमें यह ख़्याल नहीं रहा कि अल्लाह तबारक व तआला ने हमें इस दुनिया में क्यों भेजा था? अगर हमें सिर्फ़ यही एक बुनियाद समझ में आ जाए तो फिर उसके ऊपर मज़बूत से मज़बूत इमारत बनाना आसान है, लेकिन हम इस बुनियाद ही को फ़रामोश करके बैठे हुए हैं। हमें यह ख़्याल ही नहीं कि पानी कहाँ मर रहा है? अगर कोई खूबसूरत इमारत या कमरा है और आपने उसमें खूब रंग–रोग़न कर लिया लेकिन उसमें जहाँ से पानी मर रहा है, वो जगह आपके इल्म में नहीं तो इसका नतीजा यह होगा कि कुछ ही अरसा में वो दोबारा ख़राब हो जाएगा और पानी के क़तरे आने लगेंगे। ज़ाहिर है जब तक वो मनफ़ज़ बन्द नहीं होगा उस वक़्त तक सारी मेहनतें नक़्श बर–आब साबित होंगी।

इस वक़्त वाक़्या यह है कि दुनिया की क़ौमें बड़ी परेशानियों और उलझनों का शिकार हैं। आप यह न समझें कि वो बड़ी–बड़ी इमारतों में रहते हैं, आला से आला गाड़ियों में घूमते हैं, उनके पास बड़ी हुकूमतें हैं, उनके पास असबाब हैं और हर तरह के वसाइल हैं, उनके पास आला जंगी ज़राए भी हैं। सच्ची बात यह है कि ये सब कुछ होने के बाद भी वो अपने अन्दर इंसानों का दिल नहीं रखते। यही वजह है कि वह जानवरों की ज़िन्दगी गुज़ारते हैं लेकिन वह इंसान हैं और अल्लाह ने उनके अन्दर एक हिस रखी है, इसलिए जानवरों जैसी ज़िन्दगी गुज़ारने के बाद उनके अन्दर ब–हैसियत इंसान के एक बेचैनी का एहसास पैदा होता है, इसलिए कि अल्लाह ने उनके अन्दर दिल व दिमाग़ इंसानों ही का रखा है। यह ऐसी चीज़ है कि उनके इलाज का अगर कोई ज़रिया था तो वो इलाज अल्लाह तबारक व तआला ने हमें अता फ़रमाया था।

अफ़सोस की बात यह है कि हम दूसरों की बीमारियों का इलाज तो क्या करते, आज हम खुद बीमार हैं। हमने खुद को अपनी बदआमालियों से बीमार कर लिया, जबकि नुस्ख़ा हमारे पास है। हमारे आक़ा हज़रत मुहम्मद अरबी (स0अ0व0) ने हमें सजा–सजाया दस्तरख़्वान दिया है। कौन–सी चीज़ है जो हमारे पास नहीं लेकिन अफ़सोस की बात यह है कि हम उसको मानने के लिए तैयार नहीं। इस वक़्त ज़रूरत है कि हम पहले मरहले में अपने आप को पहचानें। हम ग़ौर करें कि अल्लाह ने ब–हैसियत मुसलमान हमारे ऊपर क्या ज़िम्मेदारी आइद की है और ब–हैसियत एक आख़िरी उम्मत के लिए अल्लाह हमसे क्या मुतालबा करता है?

अल्लाह तबारक व तआला ने इस आख़िरी शरीअत को ऐसा बनाया है कि इसमें दुनिया के अन्दर बसने वाले एक–एक फ़र्द–ए–बशर के लिए नजात का सामान है। अगर ग़ौर किया जाए तो दुनिया की नजात का सामान भी अल्लाह ने इसी शरीअत में रखा है। अलहम्दुलिल्लाह यह शरीअत हमारे पास है मगर अफ़सोस कि हम इसे अमली ज़िन्दगी में उतारने के लिए तैयार नहीं। जब इस नुस्ख़ा–ए–शिफ़ा को हम खुद आज़माने को तैयार नहीं तो हम दूसरों के इलाज का इन्तिज़ाम क्या कर सकते हैं?

इस वक़्त हमें अपने असल मंसब को पहचान कर मैदान–ए–अमल में आने की ज़रूरत है। हमें इस्लाम के सही अख़्लाक़ी निज़ाम, इज्तिमाई निज़ाम और मुआशरती निज़ाम को लोगों के सामने लाने की ज़रूरत है। अल्लाह ने इस्लाम को ऐसा बनाया है कि वो खुद बोलता है, वो कहीं और से नहीं बल्कि हमारी ज़िन्दगी से बोलता है, अगर हम इस्लाम को अख़्तियार करेंगे तो हमारी ज़िन्दगी से इस्लाम बोलेगा, जिसको कहते हैं "फूटना", जब बल्ब जलाओगे तो रोशनी फूटेगी और अगर स्विच बन्द कर दो तो रोशनी नहीं रहेगी, आज वाक़्या यह है कि हमारे सारे स्विच ऑफ़ हैं। हमें बस उन्हीं स्विच को खोलने की ज़रूरत है, आज हम अन्दर के असल करंट से महरूम हैं। अगर हम स्विच ऑन कर दें तो आप देखेंगे कि कैसी रोशनी फैलती है। आज इसी चीज़ की ज़रूरत है और यही पयाम–ए–इंसानियत का पैग़ाम है कि आदमी अपनी ज़िन्दगी को ऐसा बना ले कि अल्लाह ने हमें जिस मक़सद के लिए दुनिया में भेजा और आलम–ए–इंसानियत के लिए हमें एक ऐसी रोशनी दी कि अगर हम उसके मुताबिक़ अपनी ज़िन्दगी को रोशन कर लेते तो दुनिया की तारीकियाँ छँट जातीं।

तक़वा क्या है?

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

तक़्वा की एक बुनियादी शर्तः

عن عطية بن عروة قال قال رسول الله صلى الله عليه وسلم: لا يبلغ العبد أن يكون من المتقين حتى يدع ما لا بأس به حذراً لما به بأس

"हज़रत अतिय्या बिन अरवा (रज़ि0) से मरवी है कि रसूलुल्लाह (स0अ0व0) ने फ़रमायाः बन्दा उस वक़्त तक मुत्तक़ी लोगों में शामिल नहीं हो सकता जब तक कि वह उन चीज़ों को भी न छोड़ दे जिनमें कोई हर्ज नहीं, उस ख़ौफ़ से कि कहीं वह ऐसी चीज़ में मुब्तला न हो जाए जिसमें हर्ज है।" (सुनन तिर्मिज़ीः 2451)

इस हदीस में एक उसूली बात बयान की गई है, आदमी जब अपनी ज़िन्दगी में एहतियात इख़्तियार करता है और उन तमाम चीज़ों से बचता है जो उसको किसी ग़लत रुख़ की तरफ़ ले जा सकती हैं या उनमें कुछ शुब्हा है, या वह जिनमें कुछ हर्ज नहीं है लेकिन बहरहाल उसमें कुछ न कुछ खटक सी महसूस होती है, अगर कोई आदमी अपना मिज़ाज तक़्वा का बना लेता है और उन चीज़ों से अपने आपको बचा लेता है जो नाजायज़ हैं और उनमें बाक़ायदा हर्ज है, या जिनको सराहत से हराम कहा गया है तो फिर उसको यह फ़ायदा हासिल होता है कि वह मुत्तक़ीन में शुमार किया जाने लगता है।

इसके बरअक्स जो लोग ढ़क पर रहते हैं और यह सोचते हैं कि इसमें क्या हर्ज है तो फिर वह आगे बढ़कर उन चीज़ों को इख़्तियार कर लेते हैं जिनमें हर्ज होता है, जैसे हदीस में मिसाल दी गई है बादशाह की चरागाह से, अगर कोई उसके बॉर्डर तक अपना जानवर ले जाता है तो वह उन्हें चरागाह में दाख़िल होने से रोक नहीं पाएगा। यह आसान काम नहीं है, इसी तरह जब आदमी अपने नफ़्स को बेक़ाबू कर लेता है, तो ख़तरा होता है कि ज़रा सी ग़फ़लत में एक क़दम आगे बढ़ जाएगा, ज़ाहिर है ऐसी सूरत में आदमी अपने आपको नहीं बचा सकता।

आप (स0अ0व0) ने यह बात इरशाद फ़रमाई कि अगर तुम तक़्वा की सही ज़िन्दगी हासिल करना चाहते हो और मुत्तक़ीन की फ़ेहरिस्त में शामिल होना चाहते हो, तो उसका रास्ता यह है कि जिन चीज़ों में हर्ज नहीं है उन चीज़ों को भी छोड़ दिया जाए, उन चीज़ों से बचने के लिए जिनमें हर्ज है।

अगर आदमी अपनी ज़िन्दगी का जायज़ा ले तो इसमें बड़ी तफ़सीलात हैं, उसको अंदाज़ा होगा कि हमसे कहाँ–कहाँ ग़लती होती है, ज़िन्दगी के हर शोबे में ऐसी बहुत सी मिसालें हमें मिल जाएँगी, तिजारत वग़ैरह में लोग मसाइल मालूम करते हैं, इस वक़्त बहुत सी नई–नई शक्लें सामने आई हैं, जब तक इसमें मुकम्मल ये तहक़ीक़ न हो कि ये जायज़ है या नाजायज़, तब तक मुहतात रहना चाहिए। अगर जायज़ है तो इख़्तियार किया जा सकता है, लेकिन जहाँ शुब्हात हैं और जहाँ बहुत तरद्दुद के साथ हाँ कही जाती है और कुछ हर्ज सा मालूम होता है तो आदमी सोचता है कि कम–अज़–कम दस लाख का फ़ायदा है। अब अगर कुछ हर्ज भी है तो होने दो, कोई बात नहीं। आदमी सोचता है कि इतना तो चलता है जबकि यह चीज़ ख़ुद उसको चलता कर देती है। फिर आदमी अपनी जगह पर नहीं रहता, उसकी जो सही दीनी ज़िन्दगी है और वह जो तक़्वा का मिज़ाज बनाना चाहता है, वह मिज़ाज नहीं बन सकता, वह ग़लत रुख़ की तरफ़ पड़ जाएगा।

अगर देखा जाए तो आम तौर से यह बात नज़र आती है कि आदमी तदरीज से ग़लत काम की तरफ़ जाता है। एक आदमी दीनदार है और देखने में भी अच्छा मालूम होता है, लेकिन शुरू में वह कुछ ऐसी चीज़ों को इख़्तियार कर लेता है जिनके मुतअल्लिक़ कहा जाता है कि इसमें क्या हर्ज है। इतना तो चलता है। जैसे आजकल बाज़ ड्रामे चल रहे हैं और उनको भी दीन का नाम दे दिया गया है। अब लतीफ़ा यह है कि कहने वालों ने यह बात कही कि जो लोग फ़िल्में देखते हैं और उल्टे–सीधे ड्रामे देखते हैं, उनके लिए इससे बेहतर है कि यह देख लें, लेकिन मैं अर्ज़ करता

हूँ कि यह उन्हीं चीज़ों में से है जिनमें हर्ज है, इतना ठीक है कि बाज़ ड्रामों में कुछ तारीख़ बयान कर दी गई लेकिन इसके साथ जो मफ़ासिद व मुनकिरात लगे हुए हैं, उनके बारे में क्या कहा जाएगा? इसलिए एहतियात की ज़रूरत है। अगर एहतियात नहीं बरती जाएगी तो इसका नतीजा यह होगा कि बहुत से भाई बाबरकत औक़ात में भी ज़िक्र व तिलावत छोड़कर इसी लग्व काम में मस्त रहेंगे। ज़ाहिर है इन ड्रामों में बेपर्दा तस्वीरें होती हैं और म्यूज़िक वग़ैरह तो होता ही है।

इन ड्रामों का एक बड़ा मुनकर यह है कि आदमी जिस तरह ताश खेलना शुरू करता है तो उसको आस–पास का होश नहीं रहता, इसमें इस क़दर इन्हिमाक पैदा हो जाता है कि आदमी को कुछ याद नहीं रहता, मेरा ख़्याल यह है कि इस तरह के ड्रामों में भी ऐसा ही इन्हिमाक पैदा होता है, पता चला कि नमाज़ का वक़्त ख़त्म हो गया मगर ड्रामा चलता रहा और नमाज़ फ़ौत हो गई। ज़ाहिर है ऐसे काम जो आदमी के लिए ख़ैर के कामों से मानेअ बने और रोके, उसकी इजाज़त नहीं दी जा सकती।

ऐसे ड्रामों का देखना भी उन्हीं चीज़ों में से है जिनके मुतअल्लिक़ कहा जाता है कि "हर्ज है", ऐसे ड्रामों के मुतअल्लिक़ शुरू में यह बात कही गई कि वह लोग देखें जो फ़िल्में देख रहे हैं लेकिन वह लोग देख रहे हैं जो माशाअल्लाह बड़े दीनदार समझे जाते हैं। होता यह है कि जब आदमी एक क़दम बढ़ाता है तो डर होता है कि कहीं एक क़दम फिसल न जाए और एक क़दम आगे न बढ़ जाए फिर ख़तरा होता है कि वह शख़्स कल फ़िल्में वग़ैरह भी देखने लगेगा। इसी तरह दिल के अन्दर बुराइयाँ पैदा होती हैं। इन ड्रामों के अन्दर जो तस्वीरें सामने आती हैं तो उनको देखकर इंसान का दिल बुराइयों की तरफ़ जाता है, इरशाद हैः

وَمَا أُبَرِّئُ نَفْسِيْ إِنَّ النَّفْسَ لَأَمَّارَةٌ بِالسُّوْءِ إِلَّا مَا رَحِمَ رَبِّيْ إِنَّ رَبِّيْ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ

"और मैं अपने नफ़्स को पाक नहीं कहता, नफ़्स तो बुराई ही सिखाता है, हाँ मेरे रब की जो मेहरबानी हो जाए बेशक मेरा रब बड़ी बख़्शिश फ़रमाने वाला निहायत रहम फ़रमाने वाला है।"

आदमी जब ऐसी तस्वीरें देखेगा तो उसका नफ़्स बुराई की तरफ़ माइल होगा और अगर एहतियात कर ले तब भी यह डर है कि ख़ुदा–न–ख़्वास्ता कल वह बुराइयों में न पड़ जाए। मुमकिन है कि वह बदनिगाही का शिकार हो और इसके नतीजे में दूसरी बुराइयों में मुब्तिला हो जाए। यह बात कही जाती है कि बदनिगाही इब्लीस के तीरों में से पहला तीर है। अगर आदमी इसमें पड़ा तो आगे ख़तरा है कि वह कहाँ से कहाँ पहुँच जाएगा। ड्रामों के अन्दर बदनिगाही के पूरे मौक़े सामने होते हैं। जब बेपर्दा तस्वीरें हैं, मैं यह नहीं कहता कि बरहना तस्वीरें हैं लेकिन ऐसी बेपर्दा तस्वीरें हैं जिनको हम किसी हद तक बरहना भी कह सकते हैं, उनको देखने की इजाज़त बिल्कुल नहीं दी जा सकती। अगर यह बात कही जाए कि कोई हर्ज नहीं है तो ऐसी सूरत में इंसान बुराई की तरफ़ चला जाएगा।

इसी तरह बच्चों को बाज़ मर्तबा नामुनासिब लिबास पहनाया जाता है और कहा जाता है कि अभी तो बच्चे हैं, इसमें क्या हर्ज है, जबकि यही हर्ज है। आज वह बच्चे हैं, देखने वाला उसको देख रहा है, उसका ज़ेहन भी ख़राब हो रहा है, खुद बच्चे का दिमाग़ भी ख़राब हो रहा है कि इस तरह का लिबास पहनना दुरुस्त है।

इसी तरह तस्वीरों का मसला है, मार्केट के अन्दर कसरत से ऐसी चीज़ें मिलती हैं जिनके अन्दर तस्वीरें होती हैं। आदमी सोचता है कि क्या हर्ज है, जबकि उन्हें भी रखना मुनासिब नहीं है। इसमें डर है कि कल आदमी का एक क़दम आगे बढ़ जाएगा।

इसी तरह बाज़ मर्तबा दूसरों का माल हड़प करने में भी ऐसी शक्लें पैदा हो जाती हैं। इसमें भी यही सोचता है कि क्या हर्ज है, इनसे हमारा ताल्लुक़ है और ताल्लुक़ में इतना तो चलता है, जबकि अगर तहक़ीक़ की जाए तो सामने वाले का दिल मुतमईन नहीं होगा।

यह तमाम वह सूरतें हैं कि ऐसे काम न किए जाएँ, लेकिन अब तो हाल यह है कि दीनदार घराने भी महफ़ूज़ नहीं हैं। हासिल यह कि वह तमाम चीज़ें जिनमें आदमी यह महसूस करता है कि उसका देखना या करना ठीक है या नहीं, या यह काम करना ठीक है या नहीं, तो यह समझ लेना चाहिए कि वहाँ कुछ न कुछ गड़बड़ है और वह इन चीज़ों में से है जिनमें हर्ज है। यह हक़ीक़त है कि अगर आदमी इन चीज़ों को छोड़ देगा जिनमें हर्ज नहीं है तो वह उन चीज़ों से भी बच जाएगा जिनमें हर्ज है।

हिज़ानत
(बच्चों का हक़-ए-परवरिश)

मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

जब मियां–बीवी एक साथ रह रहे होते हैं तो बच्चों की परवरिश और देखभाल दोनों मिल कर करते हैं और बच्चों को माँ के लाड़ के साथ वालिद का प्यार भी हासिल होता है लेकिन परवरिश के हक़ के सिलसिले में मसला उस वक़्त शुरू होता है जब मियाँ–बीवी में तफ़रीक़ और अलाहिदगी हो जाए। उस वक़्त शरीअत बच्चे के फ़ायदे को देखती है और जिसके पास रखने में बच्चे का फ़ायदा हो परवरिश का हक़ उसी को देती है और दूसरे फ़र्द को जब चाहे अपने बच्चे से मिलने की इजाज़त देती है। इसीलिए बच्चा जब तक छोटा हो और देखभाल के लिए किसी औरत की ज़रूरत हो तो परवरिश का हक़ बच्चा की माँ या उसकी नानी–दादी जैसी किसी औरत को दिया जाता है और जब बच्चा लड़का हो तो जब वह पढ़ने–लिखने की उम्र को पहुँच जाए तो अब उसके लिए बेहतर होता है कि बाप की कस्टडी में रहे ताकि माँ की मुहब्बत में तालीम से महरूम न हो और उसका मुस्तक़बिल तबाह न हो, जबकि लड़की को उमूर–ए–ख़ानादारी सीखने की ज़रूरत होती है, लिहाज़ा उसको ज़्यादा अरसे तक औरतों के पास रखने का हुक्म दिया गया है।

चुनाँचे हज़रत अब्दुल्लाह बिन अम्र (रज़ि0) से मरवी है कि एक ख़ातून ने अर्ज़ किया: ऐ अल्लाह के रसूल! मेरे इस बेटे के लिए मेरा पेट ज़र्फ़ था, मेरी छाती से उसकी सैराबी थी और मेरी गोद उसकी जा–ए–पनाह थी और उसके बाप ने मुझे तलाक़ दे दिया है और इस बच्चे को मुझसे छीन लेना चाहता है तो रसूलुल्लाह (स0अ0व0) ने फ़रमाया:

أنت أحق به ما لم تنكحی

"जब तक तुम निकाह न करो तब तक तुमही उस की हक़दार हो।"

(अबू दाऊद: 2276, मुसनद अहमद: 6707)

ज़ाहिर है कि यह हदीस छोटे बच्चे के लिए है। इसीलिए फ़ुक़हा ने इस हदीस और दूसरी मुतअद्दिद अहादीस की बुनियाद पर हिज़ानत से मुतअल्लिक़ कई अहकाम का इस्तिनबात किया है:

माँ और दूसरी ख़्वातीन को हक़–ए–हिज़ानत कब तक रहता है?

अगर मियाँ–बीवी के दरमियान अलगाव हो जाए तो जिस बच्चे के हक़–ए–परवरिश के सिलसिले में तनाज़ा है, अगर वह लड़का है तो माँ और दूसरी ख़्वातीन को उसके सात साल की उम्र तक पहुँचने तक हक़–ए–हिज़ानत हासिल होगा और अगर लड़की हो तो ज़ाहिरुर्रिवाया के मुताबिक़ माँ और नानी दादी को उसके बालिग़ होने तक और दूसरी औरतों को उसके नौ साल मुकम्मल करने तक हक़–ए–हिज़ानत होगा और इमाम मुहम्मद की रिवायत में माँ और जद्दा को भी नौ साल तक ही हक़ होगा। अल्लामा शामी ने इमाम मुहम्मद के क़ौल को मुफ़्ता बिही क़रार दिया है। (शामी: 3/566–567)

हिज़ानत में ख़्वातीन की तरतीब:

औरतों को मुंदरजा ज़ेल तरतीब के मुताबिक़ हिज़ानत का इस्तिहक़ाक़ होता है:

(१) पहले नंबर पर परवरिश का इस्तिहक़ाक़ माँ को होता है।

(२) अगर माँ न हो या हो लेकिन वह बच्चे के नामहरम से निकाह कर ले, या अपना हक़ छोड़ दे तो परवरिश का हक़ नानी को होगा।

(३) फिर दादी को।

(४) फिर सगी बहन को।

(५) फिर अख़याफ़ी (माँ शरीक) बहन को।

(६) फिर अलाती (बाप शरीक) बहन को।

(७) फिर भाँजी को और भाँजी में भी वही तफ़सीलात रहेंगी जो बहन के सिलसिले में गुज़र चुकी हैं, अलबत्ता बाप शरीक भाँजी का इस्तिहक़ाक़ ख़ाला के बाद होगा।

(८) फिर ख़ाला को और इसमें भी बहन वाली

तफ़सीलात रहेंगी मुकम्मल तौर पर, हदीस शरीफ़ में ख़ाला को माँ के मर्तबे में क़रार दिया गया हैः الخالة بمنزلة الأم (सहीहुल बुख़ारीः २६९९)

लेकिन बाज़ दलाइल के एतिबार से जद्दा माँ ही के हुक्म में होती है लिहाज़ा जद्दा को मुक़द्दम किया गया और बहनों को भी मुक़द्दम किया गया, इस लिए कि वह वालिदैन की फ़रअ हैं।

(९) फिर भतीजी हक़दार होगी और इसमें भी बहन वाली तफ़सीलात रहेंगी।

(१०) फिर इसी तरतीब से फूफियाँ हक़दार होंगी।

बाद की कुछ और भी तफ़सीलात हैं, तवालत से बचने के लिए उनको हज़फ़ किया जा रहा है।

(शामीः ३/५५५–५६३, अल–बहरुर्राइक़ः ४/१८१–१८४)

अगर मज़्कूरा बाला औरतें न हों?

फ़र्ज़ किया जाए कि अगर ऊपर ज़िक्र की गई औरतों में से कोई मौजूद न हो तो परवरिश का हक़ मर्दों ही को मिल जाएगा और सबसे पहले बच्चे के असबात को हक़ हासिल होगा और इसमें वही तरतीब होगी जो विरासत में होती है यानी;

(१) पहले नंबर पर उसूल यानी बाप दादा को हक़ होगा।

(२) फिर भाई को और वह न हों तो उनकी औलाद को।

(३) फिर चचा और उनकी औलाद को लेकिन अगर वह बच्चा जिसकी परवरिश करनी है, लड़की हो तो चचा के लड़के को यह हक़ नहीं मिलेगा, इस लिए कि वह महरम नहीं है। (अल–बहरुर्राइक़ः ४/१८३)

हक़–ए–हिज़ानत कब साक़ित हो जाता है?

मुंदरजा ज़ेल शक्लों में हक़–ए–हिज़ानत साक़ित हो जाता हैः

(१) जब औरत खुद अपना हक़ परवरिश साक़ित कर दे और बच्चे को किसी और के इंतिज़ाम में देना मुमकिन हो। (शामीः ३/५५६)

(२) जब औरत बच्चे के नामहरम से निकाह कर ले। (शामीः ३/५५७)

(३) जब औरत को कोई मुतअद्दी मर्ज़ हो जाए जिससे बच्चे को नुक़सान पहुँच सकता हो। (शामीः ३/५५६)

(४) जब औरत ऐसी फ़ाजिरा–फ़ासिक़ा हो कि बच्चे को उसके पास रखने में नुक़सान हो सकता हो या वह मुर्तद हो जाए। (शामीः ३/५५६)

और अगर औरत यहूदी और ईसाई हो तो उसको छोटे बच्चे की परवरिश का हक़ दिया जाएगा लेकिन जब बच्चे को शऊर आने लगे और वह दीन को समझने लगे तो उसे उनकी परवरिश में नहीं रखा जाएगा।

(शामीः ३/ ५५६)

इन मवानेअ की वजह से जब हक़ परवरिश साक़ित हो जाए तो जब यह मवानेअ दूर हो जाएँ मसलनः जिसने हक़ साक़ित किया था वह अब बच्चे को परवरिश में लेना चाहे, या जिसने निकाह किया था उसकी शौहर से अलाहिदगी हो जाए या मुर्तदा मुसलमान हो जाए तो उनका हक़–ए–हिज़ानत लौट आएगा।

(फ़तावा तातारख़ानियाः ५/२७७, हिंदियाः १/५४१)

जब एक मर्तबा के कई हक़दार जमा हो जाएँ?

अगर किसी बच्चे की परवरिश के लिए एक मर्तबा के कई हक़दार जमा हो जाएँ मसलनः बच्चे की परवरिश का हक़ बहनों या भाइयों को मिल रहा हो और वह कई हों तो परवरिश का हक़ उसको होगा जो दीनदारी और सलाह व तक़वा के एतिबार से फ़ाइक़ हो, अगर इसमें सब बराबर हों तो यह हक़ ज़्यादा उम्र वाले को मिलेगा।

(हिंदियाः १/५४२)

बुलूग़ के बाद बच्चे खुद मुख़्तार होंगेः

ऊपर बयान की गई तफ़सीलात बच्चों और बच्चियों के बुलूग़ से पहले की हैं, जहाँ तक बुलूग़ के बाद का ताल्लुक़ है तो उनको इख़्तियार दिया जाएगा कि माँ बाप में से जिसके पास चाहें रहें या अलग रहें।

लेकिन अगर यह अक़लन माज़ूर हों या उनके किसी मुसीबत या फ़ितने में पड़ने का अंदेशा हो तो बुलूग़ के बाद भी बाप को हक़ होगा कि उनको अपने पास रखे।

(शामीः ३/५६७–५६८)

बच्चों का नफ़क़ा बाप पर होगाः

परवरिश का हक़ चाहे माँ या किसी और को हासिल हो लेकिन बच्चे के तमाम इख़्राजात बाप के ऊपर ही होंगे, इसकी तफ़सील आगे ''किताबुन्नफ़क़ात'' में आएगी।

(हिंदियाः १/५६०)

हज़रात अम्बिया (अलैहिस्सलाम) और दावत-ए-इन्सानियत

मौलाना अब्दुस्सुब्हान नाख़ुदा नदवी

पयाम इंसानियत का काम ज़मीन हमवार करने का काम है। हक़ीक़त में देखा जाए तो यह तमाम अंबिया (अलैहिस्सलाम) का काम है। अगर कुरआन करीम में ग़ौर किया जाए तो हर नबी ने दावत–ए–तौहीद के साथ पयाम इंसानियत की दावत भी दी है।

हज़रत नूह (अलैहिस्सलाम) ने दावत–ए–तौहीद दी लेकिन उनके ज़माने में इंसानों के अंदर फ़िर्क़ावारियत पैदा हो गई थी और वह लोग हद दर्जा तकब्बुर का शिकार थे। हज़रत नूह (अलैहिस्सलाम) ने अपनी क़ौम की इस बीमारी को मिटाने की कोशिश की। कुरआन करीम में इसका ज़िक्र है:

وَاسْتَكْبَرُوا اسْتِكْبَاراً

"और उन्होंने बड़ी अकड़ दिखाई।"

हज़रत हूद (अलैहिस्सलाम) ने दावत–ए–तौहीद दी लेकिन उनके ज़माने में भी लोगों के अंदर एक ख़ास क़िस्म का तकब्बुर पैदा हो गया था। अल्लाह रब्बुल इज़्ज़त का इरशाद है:

فَأَمَّا عَادٌ فَاسْتَكْبَرُوا فِي الْأَرْضِ بِغَيْرِ الْحَقِّ وَقَالُوا مَنْ أَشَدُّ مِنَّا قُوَّةً

"बस रहे आद तो उन्होंने ज़मीन में नाहक़ ग़ुरूर किया और बोले कि हमसे बढ़कर ताक़तवर कौन है?"

हज़रत हूद (अलैहिस्सलाम) ने अपनी क़ौम को ज़बरदस्ती जंग (इकराह) से रोकने की कोशिश की। इरशाद–ए–इलाही है:

أَتَبْنُونَ بِكُلِّ رِيعٍ آيَةً تَعْبَثُونَ* وَتَتَّخِذُونَ مَصَانِعَ لَعَلَّكُمْ تَخْلُدُونَ* وَإِذَا بَطَشْتُم بَطَشْتُمْ جَبَّارِينَ

"क्या तुम हर ऊँची जगह पर कोई यादगार बनाकर फ़ुज़ूल हरकतें करते हो? और तुमने बड़ी कारीगरी से बनाई हुई इमारतें इस तरह रख छोड़ी हैं जैसे तुम्हें हमेशा ज़िंदा रहना है? और जब तुम किसी की पकड़ करते हो तो पक्के ज़ालिम व जाबिर बनकर पकड़ करते हो।"

हज़रत सालेह (अलैहिस्सलाम) ने अपनी क़ौम को दावत–ए–तौहीद दी लेकिन उनकी क़ौम के अंदर तनाउम की एक कैफ़ियत थी तो उन्होंने उसको भी रोका, अल्लाह रब्बुल इज़्ज़त का इरशाद है:

أَتُتْرَكُونَ فِي مَا هَاهُنَا آمِنِينَ* فِي جَنَّاتٍ وَعُيُونٍ* وَزُرُوعٍ وَنَخْلٍ طَلْعُهَا هَضِيمٌ* وَتَنْحِتُونَ مِنَ الْجِبَالِ بُيُوتاً فَارِهِينَ

"क्या तुम्हें इत्मिनान के साथ इन सारी नेमतों में हमेशा रहने दिया जाएगा जो यहाँ मौजूद हैं? इन बाग़ों और चश्मों में और इन खेतों और नख़्लिस्तानों में जिनके ख़ोशे एक दूसरे में पैवस्त हैं? और क्या पहाड़ों को बड़े नाज़ के साथ तराश कर तुम हमेशा घर बनाते रहोगे?"

हज़रत लूत (अलैहिस्सलाम) ने दावत–ए–तौहीद दी लेकिन उनके ज़माने में इंतिहाई ज़लील क़िस्म की ग़लाज़त पैदा हो गई थी। इससे उन्होंने अपनी क़ौम को रोका। इरशादे इलाही है:

أَئِنَّكُمْ لَتَأْتُونَ الرِّجَالَ وَتَقْطَعُونَ السَّبِيلَ وَتَأْتُونَ فِي نَادِيكُمُ الْمُنكَرَ

"क्या तुम मर्दों (से ख़्वाहिश पूरी करने को उन) के पास जाते हो और राह मारते हो और अपनी महफ़िल में घिनौनी हरकत करते हो।"

हज़रत शुऐब (अलैहिस्सलाम) ने अपनी क़ौम को दावत–ए–तौहीद दी लेकिन इसके साथ उनकी क़ौम में सबसे बड़ी जो कमी पाई जा रही थी वह हराम कमाई का खाना था। उसको उन्होंने बहुत सख़्ती के साथ रोका। इरशाद है:

وَلَا تَبْخَسُوا النَّاسَ أَشْيَاءهُمْ وَلَا تَعْثَوْا فِي الْأَرْضِ مُفْسِدِينَ

"और लोगों को उनकी चीज़ें कम मत दिया करो और ज़मीन में बिगाड़ मचाते मत फिरो।"

हज़रत मूसा (अलैहिस्सलाम) के ज़माने में फ़िरऔन का हाल यह था कि उसने इंसानों के दरमियान तफ़रीक़ की। वह मुफ़्सिद था, उसने बाज़ लोगों को कमज़ोर किया और बाज़ लोगों को ऊपर चढ़ाया:

إِنَّ فِرْعَوْنَ عَلَا فِي الْأَرْضِ وَجَعَلَ أَهْلَهَا شِيَعاً يَسْتَضْعِفُ طَائِفَةً مِّنْهُمْ يُذَبِّحُ أَبْنَاءهُمْ وَيَسْتَحْيِي نِسَاءهُمْ إِنَّهُ كَانَ مِنَ الْمُفْسِدِينَ

"यक़ीनन फ़िरऔन ने ज़मीन में सर उठा रखा था और वहाँ के बाशिंदों को उसने टुकड़ियों में बाँट दिया था। उनमें एक गिरोह का उसने ज़ोर घटा रखा था। उनके लड़कों को ज़िबह कर डालता था और उनकी लड़कियों को ज़िंदा छोड़ देता था, यक़ीनन वह फ़सादियों में से था।"

हासिल यह कि हर नबी ने अपनी क़ौम को जब दावत–ए–तौहीद दी तो उसके साथ–साथ इंसानियत का बोलबाला करने के लिए जो चीज़ें ज़रूरी थीं वह सारी चीज़ें भी बयान कीं।

सीरत की किताबों में हुज़ूर अकरम (स0अ0व0) के बारे में यह आख़िरी दर्जे की बात मिलती है कि आप (स0अ0व0) को नुबुव्वत मिलने के बाद "हिल्फ़ुल फ़ुज़ूल" जो बेअसत से क़ब्ल हुई थी, उसके मुतअल्लिक़ इरशाद फ़रमाया करते थे:

لَوْ دُعِيتُ بِهِ فِي الْإِسْلَامِ لَأَجَبْتُهُ

"अगर मुझे आज भी इसकी दावत दी जाए तो यक़ीनन मैं सबसे पहले लब्बैक कहने वाला हूँगा।"

पयाम इंसानियत का काम भी हक़ीक़त में हज़रात अंबिया (स0अ0व0) की मीरास है। इस मीरास को लेकर हमें आगे बढ़ना है और याद रखें कि कोई नबी बुज़दिल नहीं थे और न ही कोई नबी अल्लाह की रहमत से मायूस था। कुरआन करीम में इरशाद है:

وَكُلاًّ نَّقُصُّ عَلَيْكَ مِنْ أَنبَاءِ الرُّسُلِ مَا نُثَبِّتُ بِهِ فُؤَادَكَ

"और रसूलों के जो भी वाक़्यात हम आपको सुना रहे हैं वह इसलिए कि इससे आपके दिल को ताक़त दें।"

दावत का काम करने वालों के लिए ज़रूरी है कि रसूलों के वाक़्यात का मुताला करके उनकी सुन्नतों की वह शमा जलाई जाए। हुज़ूर अकरम (स0अ0व0) की सीरत व सुन्नत को सामने रखकर हमें काम करना पड़ेगा। इसके लिए लोगों को बाक़ायदा दावत देकर यह कहलवाने की ज़रूरत नहीं है कि कितने लोग इस काम में अपने कितने दिन देंगे। हमें तो इसके लिए साल के ३६५ दिन देने पड़ेंगे। अपनी पूरी उम्र इसके लिए खपानी पड़ेगी बल्कि हम तो पैदा ही इसी लिए किए गए हैं।

आज के इन हालात में ज़रूरत है कि तमाम लोगों के साथ एहसान का मामला किया जाए। अल्लाह रब्बुल इज़्ज़त का इरशाद है:

كُنتُمْ خَيْرَ أُمَّةٍ أُخْرِجَتْ لِلنَّاسِ

"तुम सबसे बेहतरीन उम्मत हो जिसको तमाम इंसानों के लिए बरपा किया गया है।"

हम इस काम को लेकर हर–हर आदमी के पास जाएँगे। यह कोई बुज़दिलाना दावत नहीं है। यह कोई भीख माँगने की दावत नहीं है। यह इंसानों को इंसानियत सिखाने की दावत है। अपने साथ एहसान, दूसरों के साथ एहसान, इंसानियत के साथ एहसान, हमें अल्लाह रब्बुल इज़्ज़त के दीन को लेकर आगे बढ़ना और अल्लाह रब्बुल इज़्ज़त से चाहना है। अगर इस राह में हमें कभी तकलीफ़ पहुँच जाए तो अल्लाह ने हमारे और ग़ैरों के दरमियान जो तफ़रीक़ बयान की है वह ज़मीन व आसमान के ख़ला से भी बड़ी तफ़रीक़ है:

إِن تَكُونُواْ تَأْلَمُونَ فَإِنَّهُمْ يَأْلَمُونَ كَمَا تَأْلَمونَ

"अगर तुम्हें तकलीफ़ पहुँचती है तो जैसे तुम्हें तकलीफ़ पहुँचती है वैसे ही उन्हें भी पहुँचती है।"

जो भी मेहनत करता है उसे मेहनत व मशक़्क़त उठानी पड़ती है। यहाँ तक कि वह क़िताल का भी शिकार होगा। इसीलिए अल्लाह रब्बुल इज़्ज़त ने जिहाद के मौक़े पर यह बात इरशाद फ़रमाई कि अगर तुम्हें चोट पहुँचती है तो उन्हें भी चोट पहुँचती है। गोया इस सूरत में तमाम काम करने वाले बराबर हैं। दुनिया में बहुत सारी क़ौमें काम करती हैं लेकिन अल्लाह ने उनके और हमारे दरमियान एक फ़र्क़ बयान किया है, वह फ़र्क़ हमेशा पेशे नज़र रखा जाए। वह ऐसा फ़र्क़ है जो हमें हमेशा ज़िंदा रखेगा और हमारे अज़ाइम को भी बड़ा रखेगा, फ़रमाया:

وَتَرْجُونَ مِنَ اللّهِ مَا لاَ يَرْجُونَ

"और तुम अल्लाह से वह उम्मीद रखते हो जो वह नहीं रख सकते।"

राहें दोज़ख़ की–आरज़ू जन्नत की

मौलाना नासिरुद्दीन नदवी प्रतापगढ़ी

इन्सानी ज़िंदगी का सबसे बड़ा सवाल यह है कि इंसान कहाँ जा रहा है और उसका अंजाम क्या होगा? दुनिया की यह मुख़्तसर ज़िंदगी दर–असल एक इम्तिहान–गाह है जिसमें हर इंसान को अपने आमाल के ज़रिए यह साबित करना है कि वह अपने रब की रज़ा का तालिब है, या अपनी ख़्वाहिशात का गुलाम?! कुरआन–ए–करीम बार–बार इंसान को मुतवज्जेह करता है कि दुनिया की ज़िंदगी एक आरज़ी पड़ाव है और असल ज़िंदगी आख़िरत की ज़िंदगी है:

وَإِنَّ الدَّارَ الْآخِرَةَ لَهِيَ الْحَيَوَانُ لَوْ كَانُوا يَعْلَمُونَ

"और बेशक आख़िरत का घर ही असल ज़िंदगी है, काश लोग जान लेते।" (अल–अनकबूत: 64)

लेकिन इंसान की एक अजीब नफ़्सियात है कि वह बसा–औक़ात अपने आमाल और अपने दावों के दरमियान शदीद तज़ाद का शिकार हो जाता है। ज़बान पर नेकी के दावे होते हैं, दिल में जन्नत की आरज़ू होती है, लेकिन ज़िंदगी के अमली नक़्शे में गुनाहों, ग़फ़लतों और खुद–फरेबियों का एक तवील सिलसिला होता है। यही तज़ाद इंसान को धोके में मुब्तला रखता है। इंसान अपने आप को तसल्ली देता रहता है कि वह नेक है, हालांकि उसके आमाल उसके दावों की तरदीद कर रहे होते हैं।

इंसान ऐसे कामों में मशगूल है जो उसे जहन्नम के करीब ले जा रहे हैं, मगर उसका दावा यह है कि वह जन्नत का उम्मीदवार है। इस शेर में सिर्फ तंज़ नहीं बल्कि एक गहरी तम्बीह भी पोशीदा है कि अगर इंसान ने अपनी ज़िंदगी का मुहासिबा न किया तो वह अपने आमाल के अंजाम से बे–ख़बर रह कर एक ख़तरनाक धोके में मुब्तला हो जाएगा।

कुछ लोग अपनी ज़िंदगी में ऐसे रास्तों पर चल रहे होते हैं जो उन्हें तबाही की तरफ़ ले जा रहे होते हैं, मगर वह अपने आप को कामयाब समझ रहे होते हैं। यही वह कैफ़ियत है जिस पर हर इंसान को संजीदगी से ग़ौर करना चाहिए।

इस्लाम इंसान को महज़ दावों की बुनियाद पर कामयाब क़रार नहीं देता बल्कि उसके लिए अमल की बुनियाद ज़रूरी है। ईमान और अमल–ए–सालेह इस्लाम की नज़र में लाज़िम–व–मलज़ूम हैं। कुरआन–ए–करीम में बार–बार {الَّذِينَ آمَنُوا وَعَمِلُوا الصَّالِحَاتِ} का ज़िक्र इस हक़ीक़त को वाज़ेह करता है कि सिर्फ ईमान का दावा काफी नहीं बल्कि उसके साथ सालेह आमाल का होना भी ज़रूरी है। अगर इंसान के आमाल उसके ईमान की ताईद न करें तो उसका ईमान महज़ एक दावा रह जाता ळें

नबी (स0अ0व0) ने भी इंसान को इस ख़तरनाक खुद–फ़रेबी से बचाने के लिए बार–बार तम्बीह फ़रमाई। एक हदीस में आप (स0अ0व0) ने फ़रमाया: "अक़्लमंद वह है जो अपने नफ़्स का मुहासिबा करे और मौत के बाद की ज़िंदगी के लिए अमल करे और नादान वह है जो अपने नफ़्स की ख़्वाहिशात के पीछे चलता रहे और अल्लाह से महज़ उम्मीदें बाँधता रहे।"

यह हदीस दर–असल इसी हक़ीक़त की वज़ाहत करती है कि सिर्फ उम्मीदें और दावे इंसान को कामयाब नहीं बना सकते। अगर इंसान अपनी ख़्वाहिशात के पीछे चलता रहे और नेक आमाल से ग़फ़लत बरते तो उसकी उम्मीदें महज़ फ़रेब और रेत का ढेर साबित होंगी।

इंसानी तारीख़ में क़ौमें और अफ़राद उसी वक़्त तबाही के गड्ढे में गिरते हैं जब उनके दावों और उनके आमाल के दरमियान फासला पैदा हो जाता है। जब अख़्लाक़ियात सिर्फ ज़बान तक महदूद रह जाएँ और अमली ज़िंदगी में उनका कोई असर बाक़ी न रहे तो मुआशरा ज़वाल का शिकार हो जाता है। यही वजह है कि इस्लाम ने ईमान और अमल के दरमियान हम–आहंगी को बुनियादी शर्त क़रार दिया है।

यह भी एक तल्ख़ हक़ीक़त है कि इंसान बसा–औक़ात गुनाहों के माहौल में ज़िंदगी गुज़ारता है और इसके बावजूद अपने आप को नेक समझता है। वह हराम कमाई में मुब्तिला होता है, ज़ुल्म और ना–इंसाफ़ी

का मुर्तकिब होता है, लोगों के हक़ूक़ पामाल करता है, मगर इसके बावजूद उसे यक़ीन होता है कि वह जन्नत का मुस्तहिक़ है। यह वही कैफ़ियत है जिसे कुरआन ने गुरूर यानी धोके का नाम दिया है। कुरआन–ए–करीम में इरशाद है:

يَا أَيُّهَا النَّاسُ إِنَّ وَعْدَ اللَّهِ حَقٌّ فَلَا تَغُرَّنَّكُمُ الْحَيَاةُ الدُّنْيَا وَلَا يَغُرَّنَّكُم بِاللَّهِ الْغَرُورُ

"ऐ लोगो! बेशक अल्लाह का वादा सच्चा है, लिहाज़ा दुनिया की ज़िंदगी तुम्हें धोके में न डाले और न कोई धोकेबाज़ तुम्हें अल्लाह के बारे में धोके में डाले।" (फ़ातिरः 5)

यह आयत इंसान को इस हक़ीक़त की तरफ मुतवज्जेह करती है कि दुनिया की चमक–धमक और झूठी उम्मीदें इंसान को हक़ीक़त से ग़ाफ़िल कर देती हैं। इंसान यह समझने लगता है कि वह जो कुछ कर रहा है वह क़ाबिल–ए–माफ़ी है और आख़िरकार उसे जन्नत मिल ही जाएगी। हालांकि इस्लाम का उसूल यह है कि इंसान अपने आमाल के मुताबिक़ जज़ा या सज़ा का मुस्तहिक़ होगा।

रसूल–ए–अकरम (स0अ0व0) ने एक और हदीस में फ़रमायाः "वह शख़्स जन्नत में दाख़िल नहीं होगा जिसके दिल में ज़र्रा बराबर भी तकब्बुर होगा।"

यह हदीस इस हक़ीक़त को वाज़ेह करती है कि जन्नत सिर्फ दावों से नहीं बल्कि पाकीज़ा दिल और सालेह आमाल से हासिल होती है। अगर इंसान के दिल में तकब्बुर, हसद, बुग्ज़ और दुनिया–परस्ती मौजूद हो तो उसका जन्नत का दावा बे–बुनियाद होगा। इसी तरह रसूल–अल्लाह (स0अ0व0) ने फ़रमायाः "जिसे उसके आमाल ने पीछे छोड़ दिया, उसे उसका नसब आगे नहीं बढ़ा सकता।"

यह हदीस बताती है कि अल्लाह के नज़दीक असल मेयार अमल है न कि दावा, न हसब–व–नसब, न ज़ाहिरी हैसियत। अगर आमाल दुरुस्त न हों तो इंसान के तमाम दावे बे–मायने हो जाते हैं।

इंसान की इस्लाह का सबसे पुर–असर ज़रिया मुहासिबा–ए–नफ़्स है। जब इंसान रोज़ाना अपने आमाल का जायज़ा लेता है और यह देखता है कि उसकी ज़िंदगी किस सिम्त जा रही है तो उसे अपनी कमज़ोरियाँ नज़र आने लगती हैं। हज़रत उमर (रज़ियल्लाहु अन्हु) का मशहूर क़ौल है:

"तुम अपना मुहासिबा करो क़ब्ल इसके कि तुम्हारा मुहासिबा किया जाए।"

यह क़ौल दर–असल इंसान को इसी ख़तरनाक खुद–फ़रेबी से बचाने की पुर–ज़ोर दावत है। अगर इंसान दुनिया में अपने आमाल का मुहासिबा कर ले तो आख़िरत में शर्मिंदगी से बच सकता है।

हक़ीक़त यह है कि जन्नत का रास्ता ख़्वाहिशात और दावों से नहीं बल्कि मुजाहिदा और इताअत से खुलता है। कुरआन–ए–करीम में इरशाद है:

وَأَمَّا مَنْ خَافَ مَقَامَ رَبِّهِ وَنَهَى النَّفْسَ عَنِ الْهَوَى * فَإِنَّ الْجَنَّةَ هِيَ الْمَأْوَى

"और जो शख़्स अपने रब्ब के हुज़ूर खड़े होने से डरा और अपने नफ़्स को ख़्वाहिशात से रोके रखा तो बेशक जन्नत ही उसका ठिकाना है।"(अन–नाज़िआतः 40–41)

यह आयत वाज़ेह करती है कि जन्नत उन लोगों के लिए है जो अपनी ख़्वाहिशात पर क़ाबू पाते हैं और अल्लाह के एहकाम की पाबंदी करते हैं। अगर इंसान ख़्वाहिशात की गुलामी में मुब्तिला हो जाए और फिर भी जन्नत का दावा करे तो यह खुद–फ़रेबी के सिवा कुछ नहीं।

इस्लाम इंसान को उम्मीद और ख़ौफ़ के दरमियान ज़िंदगी गुज़ारने की तालीम देता है। न ऐसा ख़ौफ़ कि इंसान मायूसी का शिकार हो जाए और न ऐसी उम्मीद कि इंसान बे–फ़िक्र हो जाए। मोमिन की ज़िंदगी में उम्मीद भी होती है और ख़ौफ़ भी। यही तवाज़ुन उसे सीधे रास्ते पर क़ाइम रखता है।

अगर इंसान वाक़ई जन्नत का तालिब है तो उसे अपनी ज़िंदगी को उसके मुताबिक़ ढालना होगा। नमाज़, रोज़ा, ज़कात, सदक़ा, हुस्न–ए–अख़्लाक़, अदल–व–इंसाफ, अमानतदारी और हक़ूक़–उल–इबाद की अदायगी वह आमाल हैं जो इंसान को जन्नत के क़रीब ले जाते हैं। इसके बर–अक्स ज़ुल्म, ख़ियानत, हराम कमाई, झूठ, ग़ीबत और तकब्बुर वह आमाल हैं जो इंसान को जहन्नम के क़रीब ले जाते हैं।

लिहाज़ा अक़्ल का तक़ाज़ा यह है कि इंसान अपनी ज़िंदगी को ऐसे आमाल से भर दे जो उसे जन्नत की तरफ ले जाएँ। अगर इंसान जहन्नम के रास्तों पर चलते हुए जन्नत की उम्मीद रखे तो यह उम्मीद हक़ीक़त में एक धोका बन जाती है।

ईवान रिडली
का कुबूल-ए-इस्लाम
सैय्यद मुहम्मद मक्की हसनी नदवी

ईवान रिडली आधुनिक दौर की उन मशहूर नौमुस्लिम ख़्वातीन में शुमार होती हैं जिनकी दास्तान–ए–क़बूल–ए–इस्लाम निहायत ग़ैर–मामूली और सबक़–आमोज़ है। उनका इस्लाम से ताल्लुक़ किसी मुस्लिम ख़ानदान या मज़हबी माहौल के ज़रिए नहीं बल्कि सहाफ़त, अफ़ग़ानिस्तान का सफ़र, गिरफ़्तारी, क़ुरआन मजीद के मुतालआ और हक़ की तलाश के नतीजे में क़ायम हुआ। एक मग़रिबी सहाफ़ी जो इब्तिदा में इस्लाम के बारे में आम मग़रिबी तसव्वुरात से मुतास्सिर थी, अफ़ग़ानिस्तान में गिरफ़्तारी के बाद क़ुरआन मजीद का मुतालआ करती है, अपने साबिका ख़्यालात पर नज़र–ए–सानी करती है और बिलआख़िर 2003ई0 में इस्लाम क़बूल कर लेती है। इसके बाद उसने अपनी सहाफ़ती सलाहियतों, क़लम और ज़बान को इस्लाम और मुसलमानों के मसाइल के बारे में गुफ़्तगू के लिए इस्तेमाल किया।

ईवान रिडली 1958ई में इंग्लिस्तान के काउंटी डरहम के इलाक़े स्टैनली में पैदा हुईं। उनका ताल्लुक़ ईसाई माहौल से था और उन्होंने चर्च ऑफ़ इंग्लैंड के माहौल में परवरिश पाई। सहाफ़त को उन्होंने अपना पेशा बनाया और मुख़्तलिफ़ अख़बारात में काम करने के बाद "संडे एक्सप्रेस" से वाबस्ता हुईं। वह ऐसी सहाफ़ी थीं जो मुश्किल इलाक़ों में जाकर हालात का मुशाहदा करने और बराह–ए–रास्त रिपोर्टिंग करने में दिलचस्पी रखती थीं। यही जज़्बा उन्हें 2001ई0 में अफ़ग़ानिस्तान ले गया।

11 सितंबर 2001ई0 के वाक़्यात के बाद अफ़ग़ानिस्तान आलमी तवज्जोह का मरकज़ बन गया था। अमेरिका और उसके इत्तिहादी अफ़ग़ानिस्तान के ख़िलाफ़ फ़ौजी कार्यवाई की तैयारी कर रहे थे और तालिबान की हुकूमत के बारे में दुनिया भर में शदीद बहस जारी थी। ईवान रिडली अफ़ग़ानिस्तान के हालात को क़रीब से देखने और रिपोर्ट करने के लिए वहाँ पहुँचीं। उन्होंने बुर्क़ा पहनकर अफ़ग़ानिस्तान में दाख़िल होने की कोशिश की लेकिन वापसी के दौरान उनका कैमरा तालिबान के एक अहलकार की नज़र में आ गया और उन्हें गिरफ़्तार कर लिया गया। वह तक़रीबन दस दिन तालिबान की तहवील में रहीं।

यह गिरफ़्तारी उनकी ज़िंदगी का अहम मोड़ साबित हुई। उनके अपने बयान के मुताबिक़ उन्हें जिस तरह के तशद्दुद और बदसुलूकी का अंदेशा था। उसके बजाय उनके साथ निस्बतन एहतराम और शाइस्तगी का मामला किया गया। एक मग़रिबी सहाफ़ी के लिए यह तजुर्बा इसलिए अहम था कि उसने इस्लाम और तालिबान के बारे में उनके बाज़ पहले से क़ायम तसव्वुरात को चौलेंज किया। बाद में उन्होंने अपने इंटरव्यूज़ में इस तजुर्बे का ज़िक्र किया।

क़ैद के दौरान एक मुसलमान आलिम उनसे मिलने आए और उन्हें इस्लाम क़बूल करने की दावत दी। ईवान रिडली ने उस वक़्त इस्लाम क़बूल करने से इनकार किया। उनका कहना था कि वह क़ैद की हालत में अपनी ज़िंदगी का इतना बड़ा फ़ैसला नहीं करना चाहतीं। ताहम उन्होंने वादा किया कि अगर उन्हें रिहा कर दिया गया तो वह क़ुरआन मजीद पढ़ेंगी और इस्लाम के बारे में मुतालआ करेंगी। रिहाई के बाद उन्होंने अपने वादे को पूरा किया। यही वादा उनकी ज़िंदगी के एक नए सफ़र का आग़ाज़ बना।

लंदन वापस पहुँचकर उन्होंने क़ुरआन मजीद का मुतालआ शुरू किया। इब्तिदा में उनका मक़सद इस्लाम को समझना था, न कि फ़ौरन मुसलमान होना। वह एक सहाफ़ी थीं और किसी मज़हब या मुआशरे के बारे में राय क़ायम करने से पहले उसके बुनियादी माख़ज़ को जानना चाहती थीं। क़ुरआन पढ़ते हुए उनके सामने इस्लाम की एक ऐसी तस्वीर आई जो उनके साबिका तसव्वुर से मुख़्तलिफ़ थी। उन्हें मालूम हुआ कि इस्लाम तौहीद, अद्ल, रहम, अख़्लाक़ और इंसानी ज़िम्मेदारी की तालीम देता है और साबिका अम्बिया–ए–किराम (अलैहिमुस्सलाम) को भी तस्लीम करता है।

इस्लाम और औरत के बारे में भी उनके ख़्यालात में नुमायाँ तब्दीली आई। वह पहले यह समझती थीं कि इस्लाम औरत को दबाता है, लेकिन क़ुरआन के मुताले के बाद उन्हें महसूस हुआ कि इस्लाम औरत को एक मुकम्मल अख़्लाक़ी और रूहानी शख़्सियत के तौर पर मुख़ातिब करता है।

ईवान रिडली के लिए क़ुरआन का अद्ल और इंसाफ़ का तसव्वुर भी अहम था। क़ुरआन इंसान को दुश्मनी के

बावजूद इंसाफ़ से न हटने की तालीम देता है:

"किसी क़ौम की दुश्मनी तुम्हें इस बात पर आमादा न करे कि इंसाफ़ न करो, इंसाफ़ करो, यही तक़वा के ज़्यादा क़रीब है।"

यह तालीम एक सहाफ़ी के लिए ख़ास तौर पर क़ाबिल–ए–तवज्जोह हो सकती है क्योंकि सहाफ़त में भी हक़ीक़त, इंसाफ़ और दयानत बुनियादी उसूल समझे जाते हैं।

तक़रीबन दो साल के इस फ़िक्री सफ़र के बाद ईवन रिडली ने 2003ई0 में इस्लाम क़ुबूल कर लिया। उनका इस्लाम क़बूल करना किसी वक़्ती जज़्बाती कैफ़ियत का नतीजा नहीं था बल्कि क़ुरआन के मुताले, सवालात और ग़ौर–ओ–फ़िक्र के बाद होने वाला एक शऊरी फ़ैसला था।

इस्लाम क़बूल करने के बाद उन्होंने अपनी सहाफ़ती सलाहियतों को एक नए मक़सद के लिए इस्तेमाल किया। उन्होंने इस्लाम के बारे में लिखा, तक़रीरें कीं, मुख़्तलिफ़ मोमालिक में लेक्चर्स दिए और मुसलमानों के मसाइल को आलमी सतह पर उजागर किया। उनकी मारूफ़ किताब In the Hands of the Taliban में अफ़ग़ानिस्तान में गिरफ़्तारी और वहाँ के तजुर्बात का ज़िक्र मिलता है। उनकी एक और किताब टिकट टू पैराडाइज़ भी मारूफ़ है।

बाद में वह क़तर मुंतक़िल हुईं और अलजज़ीरा के अंग्रेज़ी शोबे से वाबस्ता रहीं। उनकी सहाफ़ती महारत और मुस्लिम दुनिया के बारे में बढ़ती हुई वाक़फ़ियत ने उन्हें इस्लाम और मग़रिब के ताल्लुक़ात पर गुफ़्तगू करने का मौक़ा फ़राहम किया। वह अफ़ग़ानिस्तान और इराक़ की जंगों की मुख़ालिफ़ रहीं और जंग के नतीजे में आम शहरीयों को पहुँचने वाले नुक़सानात के बारे में आवाज़ उठाती रहीं। फ़िलिस्तीन और गज़्ज़ा के मसले पर भी उन्होंने मुतअद्दिद मौक़ों पर इज़हार–ए–ख़्याल किया।

फ़िलिस्तीन का मसला भी ईवान रिडली की सियासी और इंसानी सरगर्मियों का एक अहम हिस्सा रहा है। वह फ़िलिस्तीनी अवाम के हुक़ूक़ की हिमायत करती रही हैं और ग़ज़ा की सूरत–ए–हाल को आलमी सतह पर उजागर करने की कोशिश करती रही हैं। ग़ज़्ज़ा की नाकाबंदी और वहाँ के इंसानी बोहरान के ख़िलाफ़ होने वाली बैनुल–अक़वामी मुहिम्मात में उनकी शिरकत भी इसी सिलसिले की कड़ी है। उन्होंने Freedom Flotilla और बाद में Global Sumud Flotilla जैसी मुहिम्मात में शिरकत करके ग़ज़ा तक इमदाद पहुँचाने और फ़िलिस्तीनी अवाम की हालत–ए–ज़ार की तरफ़ आलमी तवज्जोह मबज़ूल कराने की कोशिश की। 2025ई में वह ळसवइंस ैनउनक थ्सवजपससं के क़ाफ़िले में भी शामिल थीं जिसका मक़सद ग़ज़्ज़ा के लिए इंसानी इमदाद पहुँचाना और मुहासरे के ख़िलाफ़ एहतेजाज करना था। इस दौरान इस्राइली फ़ौजियों के हाथों काफ़ी ज़िल्लत और रुसवाई का सामना करना पड़ा लेकिन अल्लाह के सिवा वह अब तक किसी के आगे न झुकीं।

ईवान रिडली ने मुसलमान ख़्वातीन और हिजाब के बारे में भी गुफ़्तगू की। उनका कहना था कि इस्लाम क़बूल करने से पहले उनके ज़ेहन में मुसलमान ख़्वातीन और हिजाब के बारे में बहुत से मनफ़ी तसव्वुरात थे लेकिन बाद में मुख़्तलिफ़ मुस्लिम मुआशरों में तालीमयाफ़्ता, डॉक्टर, इंजीनियर और समाजी कारकुन ख़्वातीन से मिलकर उनके ख़्यालात तब्दील हुए। वह इस बात पर ज़ोर देती थीं कि इस्लाम की असल तालीमात और बाज़ मुस्लिम मुआशरों की सक़ाफ़ती रिवायात को एक ही चीज़ नहीं समझना चाहिए।

ईवान रिडली की ख़िदमत–ए–इस्लाम का मैदान बुनियादी तौर पर सहाफ़त, तस्नीफ़, तक़रीर, दावती गुफ़्तगू और मुसलमानों के मसाइल को आलमी सतह पर उजागर करना था। वह रिवायती मानी में आलिमा नहीं थीं, इसलिए उनकी ख़िदमात को आम दुनियावी दायरे में देखना ज़्यादा दुरुस्त है। उनकी अहमियत इस बात में है कि एक मग़रिबी सहाफ़ी ने इस्लाम क़बूल करने के बाद अपनी शोहरत और सलाहियतों को इस्लाम के बारे में गुफ़्तगू के लिए इस्तेमाल किया।

उनकी ज़िंदगी हमें यह भी बताती है कि इस्लाम की ख़िदमत सिर्फ़ मदरसा, मस्जिद या दीनी किताब तक महदूद नहीं। हर इंसान अपनी सलाहियत के मुताबिक़ दीन की ख़िदमत कर सकता है। आलिम इल्म के ज़रिए, उस्ताद तालीम के ज़रिए, मुसन्निफ़ क़लम के ज़रिए, सहाफ़ी सहाफ़त के ज़रिए और मुक़र्रिर अपनी ज़बान के ज़रिए। ईवान रिडली ने अपनी सहाफ़ती सलाहियत को इसी तरह इस्तेमाल किया। उनकी तमाम ख़िदमात और पुरअसर दावती गुफ़्तगू यूट्यूब पर मौजूद है।

इल्हाद का तूफ़ान – सबब और हल

मोहम्मद नज्मुद्दीन नदवी

असर–ए–हाज़िर में इल्हाद और ला–दीनियत को जिन बुनियादों से कुव्वत व तवानाई हासिल हुई, उन में एक अहम असास और ख़तरनाक फ़िक्र व नज़र मग़रिबियत–ज़दगी (डवकमतदपेउ) है जैसा कि सेक्युलरिज़्म भी एक अत्यंत ख़तरनाक नज़रिया है, जिसने तमाम निज़ामों को ज़ेर–ओ–ज़बर करके रख दिया है। मॉडर्निज़्म का तर्जुमा आम और आसान ज़बान में "नक़ली फ़िरंगी बनने का जुनून" से किया जा सकता है। इल्मी व अदबी ज़बान में "जिद्दत–पसंदी" की ताबीर भी मुस्तअमल है। मॉडर्निज़्म की पुकार है कि मज़हब कोई चीज़ नहीं। हवास व मुशाहिदा और तजरबा और अक़्ल व इद्राक के ख़ाने में कोई शै न आए तो वह इस क़ाबिल नहीं कि उसको इख़्तियार किया और बर्ता जाए। इस नज़रिया व फ़िक्री निज़ाम के पस–मंज़र व पेश–मंज़र में चंद अहम मक़सद व हदफ़ कारगर नज़र आते हैं कि मज़हब–ए–इस्लाम की असल सूरत को मस्ख़ करके एक कृत्रिम (मसनूई) इस्लाम तैयार करके पेश किया जाए और अहले–इस्लाम को उनके माज़ी के हवाले से शर्मिंदा किया जाए। अस्र–ए–रवाँ में अहले–इस्लाम को हर तरह मायूसी पर ले आना और मुस्तक़बिल की नवीद से भी ना–उम्मीद होकर रहना और ज़िंदगी को माद्दा व माद्दियत के हुसूल तक महदूद कर देना वग़ैरा हैं।

सेक्युलरिज़्म की तख़रीबकारी का अंदाज़ा ख़ामा–ए–गुज़श्ता से हल्का सा ज़रूर हुआ होगा कि अक़ाइद के हवाले से शक व शुब्हात पैदा करना और मुल्हिदाना ख़्याल व नज़र को बढ़ावा देना और इंसानी ज़िंदगी से हुकूमत व सियासत और मुआशरत से मज़हब को निकाल कर मग़रिब की पैदा की हुई क़द्रों पर सेक्युलर हुकूमत की तश्कील है। इसी तरह से मॉडर्निज़्म की तख़रीबकारी मश्रिक़ व मग़रिब की रग–रग में पैवस्त है। इसमें कोई शुब्हा नहीं कि जिद्दत–पसंदी एक अच्छा जज़्बा और इंसान की फ़ितरी चाहत है। इस्लाम ख़ुद एक फ़ितरी मज़हब है। उसने सिर्फ़ जिद्दत को जिद्दत समझ कर कोई पाबंदी नहीं लगाई। उसने अच्छी चीज़ पर हिम्मत–अफ़ज़ाई की है। इस सिलसिले में सीरत–ए–नबवी से जंग–ए–अहज़ाब व ग़ज़वा–ए–ताइफ़ वग़ैरा को बतौर–ए–नमूना देखा जा सकता है कि इन जंगों में जदीद जंगी आलात और जदीद तरीक़ा–ए–जंग इख़्तियार करने की न सिर्फ़ हौसला–अफ़ज़ाई फ़रमाई, इसी तरह ज़रई और तिजारती नीज़ जंगी बहरिया का इस्तेमाल अरबों के तईं जदीद अशिया व आलात को इख़्तियार करना था, इस पर पाबंदी नहीं बल्कि अच्छे मक़ासिद के दायरे में जिद्दत–पसंदी (मॉडर्नियत) की नकीर नहीं की है। अलबत्ता वह जिद्दत जो फ़िरऔनों और शद्दादों की तारीख़ दोहराती है। मुल्क–गीरी की हवस ख़ुदा–शनासी से दूर ले जाती है और जो उरयानी व फ़हाशी और बाहमी रज़ामंदी से ज़िना और हम–जिंस–परस्ती के जवाज़ की सनद फ़राहम करती है, और दानायान–ए–फ़रंग जो अक़्ल व दानिश के दावेदार हैं। अगर इंसानियत व हैवानियत और अख़्लाक़ व दरिंदगी के दरम्यान फ़र्क़ को मिटा दें। तो ऐसी जिद्दत–पसंदी (मॉडर्निज़्म) की किसी ख़ित्ता–ए–अर्ज़ी में इजाज़त नहीं होगी। इल्हाद व दहरियत और ला–मज़हबी किरदार कहीं भी दर आए, हैरत यह होती है कि इल्हाद मज़हब व दीन को छोड़कर इंसान को गर्दाब में ला देता है। इसके बाद मुआशी व मुआशरती और दीगर अहम मसाइल में भी वहम व गुमान के दरम्यान गर्दिश में रहता है, क्योंकि इल्हाद किसी भी निज़ाम के मातहत मसाइल और इंसान के ज़हन में उभरने वाले सवालों के जवाबात से फ़िल–असल आजिज़ है और यह कोई निज़ाम–ए–ज़िंदगी भी नहीं है, जबकि कम से कम कम्युनिज़्म ने अख़्लाक़ी ज़िम्मेदारी सतही तौर पर या बराए–नाम सही पूरा करने की कोशिश की, अगरचे इसके पूरी तरह नाकाम होने में अब किसी को शुब्हा नहीं रहा।

मॉडर्निज़्म को फ़रोग़ देने और पूरी दुनिया–ए–इंसानी में आम करने बल्कि मुसल्लत करने के तईं विभिन्न हर्बे और वसाइल इख़्तियार किए गए। यह वह वसाइल व हर्बे हैं जिनसे बा–आसानी इल्हाद व ला–मज़हबी फ़िक्र व ज़हन की तश्कील और उसकी इशाअत ब–सहुलत हो जाती है, उनमें चंद बहुत अहम हैं मसलनः तालीम व तर्बियत का निज़ाम, सियासत का मैदान, क़ानून व निज़ाम–ए–अदल व इंसाफ़, फुनून–ए–लतीफ़ा व तफ़रीह व खेल–कूद और मुईशत व तिजारत के अलावा जाहिली व लिसानी व इलाक़ाई असबियत का फ़रोग़ व इशाअत वग़ैरा।

इसके साथ ही अत्यंत अहम अनसुर या असास आज़ादी–ए–निस्वाँ की पुकार और उसकी तशहीर भी है। यह वह ख़ौफ़नाक और अज़ीयतनाक बल्कि ईमान–सोज़ वसाइल हैं जिनसे नौ–ए–इंसानी पूरी तरह आज़ाद नहीं है। उनमें मीडिया (डमकपं) इल्हाद व ला–मज़हबी फ़िक्र व ख़्याल की इशाअत में एक अहम ज़रिया और बहुत ख़तरनाक व प्रभावशाली हथियार है। उसने शक व शुब्हात फैलाने में बड़ा अहम काम किया है। शहवत–परस्ती व फ़ित्ना–परवरी की राहें खोलता है और यह सब कुछ तफ़रीह के नाम पर होता है। मौलाना नज़र–उल–हफ़ीज़ नदवी (रह0) की "मग़रिबी मीडिया और उसके असरात" में खुल कर फ़िरंगियत के क़ाइम किए गए संगीन नुक़ूश और उसके असरात को नुमायाँ किया है और यह भी बताया है किः

"सियासी व इक़्तिसादी दबाव के मश्रिक़ी क़ौमों को भी अबाहियत के रास्ते पर डाला जा रहा है ताकि वह भी मग़रिबी मुआशरे की तरह ज़बरदस्त समाजी, अख़्लाक़ी और नफ़्सियाती भूचाल से दोचार हो जाएँ और ऐसे खोखले समाज की तरह हो जाएँ जहाँ इंसानी क़द्रों की न क़ीमत होती है न ही बाहमी उल्फ़त व मोहब्बत की गर्मी और न इख़्लास व दिल–सोज़ी और हमदर्दी व तआउन का जज़्बा होता है। माद्दा–परस्ती और बे–लगाम आज़ादी पर मुब्नी फ़िल्मों और अख़्लाक़ी व इंसानी वजूद के अदम–तहफ़्फ़ुज़ ने जो ज़बरदस्त अख़्लाक़ी बोहरान मग़रिबी मुआशरे में पैदा कर दिया है वही बोहरान इस वक़्त मश्रिक़ में पैदा हो रहा है।" (मग़रिबी मीडिया और उसके असरातः 21)

मॉडर्निज़्म के वसाइल में से एक तालीम भी है। उसने बड़ी चाबुक–दस्ती और होशियारी से सेक्युलरिज़्म की ज़ाहिरी ख़ूबसूरती के सहारे तालीम के इदारे क़ाइम किए और रफ़्ता–रफ़्ता इल्हाद व ला–मज़हबियत और इसी तरह मज़हब व दीन के हवाले से शक व शुब्हात की आबयारी होती चली गई और इसके पहलू–ब–पहलू मर्द व ज़न के बाहमी इख़्तिलात पर सिलसिला–ए–तालीम जारी किया कि नफ़्स व माद्दियत के मारों और उसके परस्तारों को शऊर व ला–शऊर में बिछाए गए जाल में जकड़ कर रह से गए, साथ ही शख़्सी आज़ादी ऐसी इस राह से आई कि नफ़्स को फलने–फूलने का मौक़ा मिलता रहा और दीन व मज़हब का लबादा उतारने में कोई शै माने नहीं रही। इस तरह इल्हाद व ला–दीनिय्यत और ग़ैर–मज़हबीयत ने तालीम, इदारों और मुआशरे में जगह पाई और मज़हब–बेज़ारी व इल्हाद ने इस तरह समाज में मज़हब–दुश्मन अनसुर को ख़ुदा–शनासों और बुत–परस्तों दोनों के दरम्यान में फ़रोग़ दिया कि कोई इसके असरात से महफ़ूज़ नहीं रह सका, इस पस–मंज़र में लॉर्ड मैकाले का यह बयान किस फ़िक्र व नज़र की दावत देता है किः

"इन तालीमी इदारों में मुसलमान ईसाई न भी बनेंगे तो कम अज़ कम मुसलमान भी नहीं रहेंगे।"

क़ौमों के उरूज व ज़वाल की तारीख़ में कल का यह बयान किस क़दर दुरुस्त साबित हुआ, लिसान–उल–अस्र अकबर इलाहाबादी ने यह कह कर इसकी हक़ीक़त पर मोहर भी लगा दी किः

हम समझते थे कि लाएगी फ़राग़त तालीम
क्या ख़बर थी कि चला आएगा इल्हाद भी साथ

इल्हाद की यह हवा और तूफ़ान तालीम–गाहों और इल्मी इदारों से उठा, इल्म व अदब और ज़बान की तरफ़ से भी यह इल्हाद आया है, इमाम सैयद अबुल हसन अली नदवी (रह0) ने लिखा है किः

"अब इल्हाद अदब के रास्ते से आ रहा है, चुनाँचे यह हमारा मुताला है कि अक्सर जामियात के शोबा–ए–अदब, वह अंग्रेज़ी हो या उर्दू, यह ख़ास तौर पर अक़ाइद में तज़लजुल पैदा करने और इल्हाद व तजद्दुद और आज़ाद ख़्याली का केंद्र रहे हैं और अब भी बहुत सी यूनिवर्सिटीयों में यही हाल है कि इंग्लिश डिपार्टमेंट और ख़ास तौर पर उसमें पढ़ने वाले जो तलबा हैं, वह आज़ाद ख़्याल होते हैं और उनके अंदर बग़ावत पैदा होती है क़दीम इक़दार और दीनी इक़दार से।" (तालिबान–ए–उलूम–ए–नबुव्वत का मक़ाम और उनकी जिम्मेदारियाँः 2/19)

इन्सान कुरआन करीम की नज़र में

अबुल हसन अली हसनी

किसी भी किताब को समझने, उससे इस्तिफ़ादा करने, उसके पैग़ाम को अख़्ज़ करने फिर उसकी नश्र–ओ–इशाअत में अपनी तवज्जोहात मर्कूज़ करने और बक़द्रे–इस्तिताअत सलाहियतें सर्फ़ करने पर आमादा हो जाने में एक बड़ा और अहम किरदार इस बात का होता है कि साहिबे–किताब की नज़र में पढ़ने वाले की क्या हैसियत है। यह इंसानी फ़ितरत है कि अगर किसी भी किताब में ख़ास तौर से उसका ज़िक्र हो तो वह उसको बड़े ज़ौक़ व शौक़ से पढ़ता है और अगर इस किताब का मरकज़ी मौज़ू ही वही हो तब तो वह किताब उसको अज़ीज़तरीन हो जाती है।

कुरआन–ए–करीम कलाम–ए–इलाही है, जिसके नुज़ूल का सबब हिदायत–ए–इंसान और जिसका बुनियादी मक़सद तज़किया–ए–इंसान है। इसमें अल्लाह रब्बुल–इज़्ज़त ने इंसान को बहुत बुलंद कलिमात और बहुत आला शान से नवाज़ा है और मुख़्तलिफ़ आयात में इस तरह ज़िक्र किया है कि हर–हर आयत पर इंसान सर–ब–सजदा उस मालिक–ए–हक़ीक़ी का शुक्र बजा लाए कि उसने ज़र्रे को क़मर बना दिया, हम यहाँ चंद मिसालें पेश करते हैं:

तकरीम:

कुरआन–ए–करीम में एक जगह ज़िक्र है कि इंसान को इज़्ज़त व शर्फ़ से हमकिनार किया गया है। यह ऐज़ाज़ उस ज़ात–ए–बाबरकत की तरफ़ से अता हुआ है जिसकी हम्द–ओ–सना में आसमान व ज़मीन, चरिंद व परिंद, बहर व बर, हूर व मलाइका और कायनात का ज़र्रा–ज़र्रा मशग़ूल है। उसकी तरफ़ से किसी को इज़्ज़त अता होना उसकी शान को किस क़दर बुलंद कर देता है, इसका अंदाज़ा किया जा सकता है, अल्लाह रब्बुल–इज़्ज़त फ़रमाता है:

وَلَقَدْ كَرَّمْنَا بَنِيٓ ءَادَمَ وَحَمَلْنَٰهُمْ فِي ٱلْبَرِّ وَٱلْبَحْرِ وَرَزَقْنَٰهُم مِّنَ ٱلطَّيِّبَٰتِ وَفَضَّلْنَٰهُمْ عَلَىٰ كَثِيرٍ مِّمَّنْ خَلَقْنَا تَفْضِيلًا

“और यक़ीनन हमने आदम की औलाद को इज़्ज़त बख़्शी और ख़ुश्की और समुंदर में उनको सवारी दी और उनको अच्छे–अच्छे रिज़्क़ दिए और अपनी मख़्लूक़ात में बहुतों पर उनको ख़ास रुत्बा बख़्शा।” (अल–इस्रा: 70)

तन्ज़ील:

कुरआन–ए–करीम अफ़ज़लुल–बशर पर तमाम इंसानों के लिए नाज़िल हुआ, गोया आलम–ए–इंसानियत को आलम–ए–बाला से सरचश्मा–ए–नूर व हिदायत अता हुआ:

وَأَنزَلْنَآ إِلَيْكَ ٱلذِّكْرَ لِتُبَيِّنَ لِلنَّاسِ مَا نُزِّلَ إِلَيْهِمْ وَلَعَلَّهُمْ يَتَفَكَّرُونَ

“और (किताब) नसीहत आप पर इसलिए उतारी ताकि आप लोगों के लिए उन चीज़ों को खोल दें जो उनकी तरफ़ उतारी गई हैं और शायद वह ग़ौर करें।” (अन्नहल: 44)

तनईम:

अल्लाह रब्बुल–इज़्ज़त के बेपायाँ एहसानात हैं, बनी नौ–ए–इंसान पर नेमतों के दहाने इस तरह खोले कि उनका शुमार इंसान के बस में नहीं जिसकी सराहत ख़ुद कुरआन–ए–करीम करता है लेकिन उन लातादाद नेमतों से क़ता–ए–नज़र अल्लाह रब्बुल–इज़्ज़त की एक ऐसी आयत भी है जिसके शुक्र में दुनिया का हर ज़र्रा भी हम्द सरा हो जाए तब भी उसका हक़ अदा न होगा अल्लाह तआला फ़रमाता है:

ٱلْيَوْمَ أَكْمَلْتُ لَكُمْ دِينَكُمْ وَأَتْمَمْتُ عَلَيْكُمْ نِعْمَتِي

“आज मैंने तुम्हारे लिए तुम्हारा दीन मुकम्मल कर दिया और तुम पर अपनी नेमत तमाम कर दी।”

इनआमात तो तमाम मख़्लूक़ात पर हैं लेकिन नेमत का इत्माम इंसान के नसीब में ही आया।"

(अल–माईदाः 3)

तहसीनः

यूँ तो कायनात का ज़र्रा–ज़र्रा ख़ालिक़ की ख़िल्क़त और उसकी करिश्मासाज़ी का मज़हर है। दरिया की रवानी, पहाड़ों की जवानी, आफ़ताब की ज़ौफ़िशानी और माह व अन्जुम की ताबानी व दरख़्शानी में कुदरत की जल्वागरी अयाँ–बयाँ है लेकिन जब हुस्न–ओ–जमाल का ज़िक्र आया तो इरशादे–ज़ाते–बारी तआला हुआः

لَقَدْ خَلَقْنَا ٱلْإِنسَـٰنَ فِىٓ أَحْسَنِ تَقْوِيمٍ

"हमने इंसान को बेहतरीन साँचे में (ढाल कर) पैदा किया है।" (अत्तीनः 4)

तहबीबः

यह इंसान के लिए किस क़दर फ़ख़्र की बात है कि जिसकी मुहब्बत में हर जानदार व बेजान मदहोश व सरशार है, जो तमाम मुहब्बतों का महवर व मरकज़ है, उस ज़ात ने इंसान से अपनी मुहब्बत का इज़हार निराले अंदाज़ में किया। हक़ तआला ने इंसान–ए–अव्वल की तख़्लीक़ से पहले भी और बाद में भी (यानी दो मर्तबा) तमाम फ़रिश्तों को सजदे का हुक्म दिया और इब्लीस के इनकार पर इरशाद हुआः

يَـٰٓإِبْلِيسُ مَا مَنَعَكَ أَن تَسْجُدَ لِمَا خَلَقْتُ بِيَدَىَّ

"ऐ इब्लीस! जिसे मैंने अपने दोनों हाथों से बनाया उसको सज्दा करने से तुझे किस चीज़ ने रोका?"

(स्वादः 75)

यह एक ऐसा मानेख़ेज़ जुमला है कि जिसको सुन कर इंसान मस्त व बेखुद हो जाए, जामे–मुहब्बत पीता चला जाए, इश्क़े–हक़ीक़ी में ग़ोता–ज़नी करता चला जाए और इस शेर का मुस्दाक़ बन जाएः

दो आलम से करती है बेगाना दिल को
अजब चीज़ है लज़्ज़ते–आशनाई

इंतिसाबः

यह भी अल्लाह का ख़ास फ़ज़्ल है कि उसने इंसान की निस्बत जगह–जगह अपनी तरफ़ की है, जब इंसान की तख़्लीक़ हुई तो फ़रमायाः

فَإِذَا سَوَّيْتُهُۥ وَنَفَخْتُ فِيهِ مِن رُّوحِى

"फिर जब मैं उसको पूरा कर लूँ और उसमें अपनी रूह फूँक दूँ।" (अल–हज्रः 29)

इसी तरह जब इंसान के औसाफ़ व कमालात का ज़िक्र किया तो उसको ''इबादुर्रहमान'' का लक़ब अता किया और जब कुरआन–ए–करीम की आख़िरी सूरह में अपनी रुबूबियत व बादशाहत और अपनी उलूहियत का ज़िक्र किया तो उसकी निस्बत भी तमाम कायनात को छोड़कर इंसानों की तरफ़ की चुनाँचे फ़रमायाः

قُلْ أَعُوذُ بِرَبِّ ٱلنَّاسِ مَلِكِ ٱلنَّاسِ إِلَـٰهِ ٱلنَّاسِ

"कहिए कि मैं पनाह में आता हूँ तमाम लोगों के परवरदिगार की, लोगों के बादशाह की, लोगों के माबूद की।" (अन्नासः 1–3)

तस्ख़ीरः

इन तमाम नवाज़िशों और करम–नवाइयों के बाद बारगाह–ए–खुदावंदी से सदा बुलंद होती है कि हमने यह माह व खुर्शीद, यह सितारे व सय्यारे, यह शजर व हजर, यह बहर व बर, यह दरिया व सहरा व खुश्क व तर, गोया ज़मीन व आसमान में मौजूद हर चीज़ को इंसान के लिए मुसख़्ख़र कर दिया है। इरशाद–ए–बारी तआला हैः

وَسَخَّرَ لَكُم مَّا فِى ٱلسَّمَـٰوَٰتِ وَمَا فِى ٱلْأَرْضِ جَمِيعًا مِّنْهُ ۚ إِنَّ فِى ذَٰلِكَ لَـَٔايَـٰتٍ لِّقَوْمٍ يَتَفَكَّرُونَ

"और जो कुछ आसमानों में है और जो कुछ ज़मीन में है वह सब उस (अल्लाह) ने अपनी तरफ़ से तुम्हारे लिए मुसख़्ख़र कर दिया यक़ीनन इसमें उन लोगों के लिए बड़ी निशानियाँ हैं जो ग़ौर करते हैं।" (अल–जासियाः 13)

इन तमाम एहसानात के इस्तिहज़ार के साथ जब इंसान अल्लाह का कलाम पढ़ेगा तो उसके मानी व मतलब उसके क़ल्ब में जाँगुज़ीं होते चले जाएँगे और फिर एक ऐसा रूहानी और कुरआनी इंसान निखर कर सामने आएगा जो तमाम आलम के लिए नमूना होगा।

(ख़ुलासा–ए–दर्सः
मौलाना अब्दुस्सुब्हान नाख़ुदा नदवी)

दिल की सख़्ती का इलाज

सैफुल्लाह फ़ैज़ी नदवी

दुनिया के बेश्तर ज़ुल्म तलवार से और न सिर्फ़ गोलियों की बौछार से होते हैं बल्कि बाज़ ज़ुल्म वह होते हैं जो दिल की सख़्ती के नतीजा में होते हैं। जब किसी का दिल सख़्त हो जाए तो उस इंसान को दूसरों का दर्द महसूस नहीं होता। वह अपने रवैय्ये और अल्फ़ाज़ से दूसरों को ज़ख़्मी करता है। अपने इख़्तियारों और अपनी ताक़त से दूसरों के दिलों को छलनी करता है। दुनिया में मज़ालिम की ऐसी बहुत सी शक्लें हैं कि इस दुनिया में उन पर मुआख़ज़ा ज़रूरी नहीं, हालांकि अल्लाह की अदालत में उन पर पूछताछ ज़रूर होगी। इरशाद–ए–इलाही है:

فَوَرَبِّكَ لَنَسْـَٔلَنَّهُمْ أَجْمَعِينَ عَمَّا كَانُوا۟ يَعْمَلُونَ

"बस आपके रब की क़सम! हम इन सब से पूछेंगे, क्या कुछ वह किया करते थे।" (अल–हिज्रः 92–93)

आज अस्ल सवाल यह है कि दिल की वह सख़्ती कैसे ख़त्म होगी जो ज़ालिम को ज़ुल्म करने पर मजबूर करती है और ज़ालिम का दिल पत्थर या उससे भी ज़्यादा सख़्त बना देती है, इरशाद है:

ثُمَّ قَسَتْ قُلُوبُكُم مِّنۢ بَعْدِ ذَٰلِكَ فَهِىَ كَٱلْحِجَارَةِ أَوْ أَشَدُّ قَسْوَةً

"फिर उसके बाद (भी) तुम्हारे दिल सख़्त हो गए तो यह पत्थर की तरह हैं या उससे भी ज़्यादा सख़्त।" (अल–बक़राः 74)

दिल की सख़्ती का सही इलाज दिल के अंदर नर्मी पैदा करना है और इसके लिए ज़रूरी है कि इसमें मुहब्बत–ए–रसूल (स0अ0व0) पैवस्त हो तो वह दिल इस हदीस का मज़हर बन जाता है। इरशाद–ए–नबवी (स0अ0व0) है:

الرّاحمونَ يرحمُهُمُ الرَّحمنُ ارحَموا من في الأرضِ يرحَمْكم من في السَّماءِ

"रहम करने वालों पर रहमान रहम फ़रमाता है, तुम ज़मीन वालों पर रहम करो, आसमान वाला तुम पर रहम फ़रमाएगा।" (अत्तिर्मिज़ीः 1924)

अल्लाह को वह दिल मतलूब है जिसमें रहम हो, मुहब्बत हो, शफ़क़त हो, ख़ैरख़्वाही और नर्मी हो। जिस दिल में रहम होगा, शफ़क़त होगी, प्यार होगा, अफ़्व व दरगुज़र और माफ़ करने का जज़्बा होगा, वह दिल यक़ीनन नर्मी व मुहब्बत का पैकर होगा और ज़ुल्म के तसव्वुर से भी पाक होगा। इंसान के दिल में नरमी उस वक़्त पैदा होगी जब उसका दिल क़ुरआन मजीद से मुनव्वर हो, क़ुरआन मजीद दिलों में नर्मी पैदा करने का सबसे मोअस्सिर ज़रिया है। क़ुरआन में अल्लाह का इरशाद है:

يا أَيُّهَا النَّاسُ قَدْ جَاءَتْكُم مَّوْعِظَةٌ مِّن رَّبِّكُمْ وَشِفَاءٌ لِّمَا فِي الصُّدُورِ وَهُدًى وَرَحْمَةٌ لِّلْمُؤْمِنِينَ

"ऐ लोगो! तुम्हारे पास तुम्हारे रब की तरफ़ से नसीहत और दिलों के रोग की शिफ़ा और अहल–ए–ईमान के लिए हिदायत व रहमत आ पहुँची।"

यह आयत हमें साफ़ पैग़ाम देती है कि अपने ख़ालिक़–ए–हक़ीक़ी की नसीहत हासिल करने, अपने दिलों के ज़ंग को दूर करने और इंसानी समाज में हिदायत व रहमत और अम्न व मुहब्बत का पैग़ाम आम करने के लिए क़ुरआन मजीद से वाबस्तगी बहुत ज़रूरी है।

आज ज़रूरत यह है कि हम अल्लाह के बंदों पर रहम करें। अगर हम मालिक हैं तो ग़ौर करें कि क्या हमारा मुलाज़िम हम से ख़ुश है? अगर हम अपने घर के ज़िम्मेदार और सरपरस्त हैं तो हम सोचें कि अपने घर वालों के लिए दारोग़ा तो नहीं? अगर हमारे पड़ोस में कोई शख़्स है तो हम देखें कि हमारा पड़ोसी हमारी ज़बान और हाथ से महफ़ूज़ है? वग़ैरह–वग़ैरह। अगर हमें इन सवालों का जवाब नफ़ी में मिलता है तो हम अल्लाह की रहमत के उम्मीदवार कैसे हो सकते हैं?!

बिला शुब्हा कमज़ोरों का सहारा बनना, मिस्कीनों के सर पर हाथ फेरना और माफ़ी का जज़्बा दिलों को नर्म कर देता है। लिहाज़ा ज़रूरत है अपने दिलों में रहम पैदा करने की, अपने घरों को मुहब्बत का गहवारा बनाने की, अपने मातहतों के साथ हुस्न–ए–सुलूक करने की। हुज़ूर (स0अ0व0) की पूरी ज़िंदगी इसी मिशन की आईना–दार है।

सबक़ हम को मिला है यह तरीक़–ए–जान–ए–रहमत से

दिलों में घर किया जाता है पैग़ाम–ए–मुहब्बत से।

इख़्लास–ओ–अख़्लाक़ का अदम–ए–तवाज़ुन

मुहम्मद अरमग़ान बदायूनी नदवी

वाक़्या यह है कि इंसान की शख़्सियत सिर्फ़ उसके आमाल से नहीं बनती बल्कि उसके आमाल के पीछे छुपी नीयत और उन आमाल के दूसरों पर पड़ने वाले असरात से भी बनती है।

दीन–ए–इस्लाम ने इंसान की इस्लाह के लिए दो बुनियादी पहलुओं पर ग़ैरमामूली तवज्जो दी है: (१) इख़्लास (२) अख़्लाक़

इख़्लास इंसान के बातिन को सँवारता है और अख़्लाक़ उसके ज़ाहिर को। इख़्लास इंसान को अल्लाह से जोड़ता है और अख़्लाक़ उसे अल्लाह की मख़्लूक़ के लिए रहमत बनाता है। जब यह दोनों एक साथ हों तो एक मुतवाज़िन, सालेह और मोअस्सिर शख़्सियत वजूद में आती है लेकिन जब इनमें अदमे–तवाज़ुन पैदा हो जाए तो दीनदारी का हुस्न मुतास्सिर होने लगता है।

आज हमारे मुआशरे का एक अहम मसला इख़्लास व अख़्लाक़ का यही अदमे–तवाज़ुन है। आम तौर पर लोग इबादात, नवाफ़िल, तिलावत, ज़िक्र व अज़कार और दीनी मशाग़िल में बहुत आगे होते हैं मगर उनके मिज़ाज में सख़्ती, बातचीत में तल्ख़ी, मामलात में बे–ऐतिदाली और लोगों के साथ बरताव में नागवारी नुमायाँ नज़र आती है।

इसी तरह कुछ लोग खुश अख़्लाक़, नर्मगुफ़्तार और मिलनसार होते हैं लेकिन इबादात और अल्लाह से ताल्लुक़ के मामले में ग़फ़लत का शिकार होते हैं। इस्लाम दोनों में से किसी एक को काफ़ी नहीं समझता बल्कि वह इंसान से बातिन की पाकीज़गी और ज़ाहिर की शाइस्तगी, दोनों का मुतालबा करता है।

इख़्लास का मतलब यह है कि इंसान अपने हर अमल में अल्लाह तआला की रज़ा को मक़सूद बनाए। वह कोई नेकी इसलिए न करे कि लोग उसे नेक समझें। इल्म इसलिए न हासिल करे कि उसे आलिम कहा जाए। सदक़ा इसलिए न दे कि उसकी सख़ावत के चर्चे हों और इबादत इसलिए न करे कि लोग उसकी दीनदारी से मुतअस्सिर हों। रसूलुल्लाह (स0अ0व0) ने फ़रमाया है: "आमाल का दारोमदार नीयतों पर मौक़ूफ़ है।"

इख़्लास इंसान को रिया, नुमूद व नुमाइश और खुदपसंदी से बचाता है। यह वह अंदरूनी कुव्वत है जो इंसान को उस वक़्त भी नेकी पर क़ायम रखती है जब उसे देखने वाला कोई न हो लेकिन इख़्लास का दावा सिर्फ़ ज़बान से नहीं किया जा सकता बल्कि उसकी हक़ीक़त इंसान के रवैय्या, मामलात और तन्हाई में ज़ाहिर होती है। इसीलिए इख़्लास के साथ अख़्लाक़ की खूबी का होना भी इंसान के दर्जा–ए–कमाल पर फ़ाइज़ होने की अलामत है।

इस्लाम ने अख़्लाक़ को महज़ एक समाजी खूबी क़रार नहीं दिया बल्कि उसे ईमान और दीनदारी के बुनियादी मज़ाहिर में शुमार किया है, इरशाद–ए–नबवी (स0अ0व0) है: "मोमिनों में कामिल तरीन ईमान वाला वह है जिसके अख़्लाक़ सबसे अच्छे हैं।"

अच्छे अख़्लाक़ का मतलब सिर्फ़ मुस्कुरा कर मिल लेना नहीं बल्कि इसमें सब्र, तहम्मुल, अफ़्व व दरगुज़र, तवाज़ो, सच्चाई, वादे की पाबंदी, हुस्ने–गुफ़्तगू, दूसरों के एहसासात का लिहाज़ और मामलात में दियानतदारी सब शामिल हैं।

बसा औक़ात हम मस्जिद में सफ़–ए–अव्वल के नमाज़ी को देखकर उसकी दीनदारी का अंदाज़ा लगाते हैं लेकिन यह नहीं देखते कि वह अपने घरवालों के साथ कैसा बरताव करता है, हम किसी की तिलावत और ज़िक्र की कसरत देख लेते हैं मगर उसके मातहतों, पड़ोसियों, कमज़ोरों और ज़रूरतमंदों के साथ उसका रवैय्या हमारी नज़र से ओझल रहता है, हालाँकि इंसान की हक़ीक़ी तरबियत का इम्तिहान अक्सर उन्हीं मक़ामात पर होता है जहाँ उसे अपने नफ़्स पर क़ाबू पाना पड़ता है।

इख़्लास का तसव्वुर अगर अख़्लाक़ से अलग हो

जाए तो इंसान अपनी नेकी को अपनी बरतरी समझने लगता है। वह इबादतगुज़ार तो हो सकता है मगर दूसरों को हक़ीर समझने लगता है। उसे अपनी नेकी नज़र आती है, दूसरों की कमज़ोरी नज़र आती है। उसे अपनी इबादत का एहसास रहता है मगर अपने लहजे की सख़्ती का एहसास नहीं रहता और उसका लाज़िमी नतीजा यह ज़ाहिर होता है कि इंसान दीन की बात तो बहुत करता है लेकिन उसकी ज़ात से दीन की खुशबू कम आती है।

वह लोगों को नसीहत करता है मगर उनके हालात को नहीं समझता। इस्लाह चाहता है मगर उस्लूबे–इस्लाह में हिकमत नहीं बरतता। हक़ की बात कहता है मगर हक़ बात कहने का अख़लाक़ भूल जाता है। नतीजा यह निकलता है कि जिस दीन की ख़ूबसूरती उसके ज़रिए लोगों तक पहुँचनी चाहिए थी। वही दीन उसके सख़्त रवय्ये की वजह से लोगों को मुश्किल महसूस होने लगता है।

इसका मतलब यह हरगिज़ नहीं कि हक़ बात कहना छोड़ दिया जाए या बुराई पर ख़ामोशी इख़्तियार कर ली जाए। अस्ल मतलूब यह है कि हक़ के साथ हिकमत, इस्लाह के साथ शफ़क़त और दीनदारी के साथ हुस्ने–अख़्लाक़ भी एक इंतिहाई ज़रूरी चीज़ है।

दूसरी तरफ़ अख़्लाक़ भी इख़्लास से ख़ाली हो जाए तो वह महज़ समाजी फ़न बनकर रह जाता है। खुश–अख़्लाक़ी सिर्फ़ इसलिए कि लोग तारीफ़ करें। सख़ावत इसलिए कि नाम हो। मुस्कुराहट इसलिए कि ताल्लुक़ात बेहतर रहें और ख़िदमत इसलिए कि शख़्सियत मक़बूल हो। यह सब बज़ाहिर ख़ूबसूरत आमाल हो सकते हैं लेकिन इनमें रूहे–इख़्लास न हो तो इंसान का बातिन ख़ाली रह जाता है।

इस्लाम जिस अख़्लाक़ का मुतालबा करता है वह सिर्फ़ लोगों को खुश करने के लिए नहीं बल्कि अल्लाह को राज़ी करने के लिए है। इसी लिए एक मुसलमान की अस्ल ख़ूबी यह है कि वह लोगों के साथ अच्छा सुलूक उस वक़्त भी करे जब उसे बदले में तारीफ़, शुक्रिया या फ़ायदा मिलने की तवक़्क़ो न हो।

इख़्लास और अख़्लाक़ के तवाज़ुन को परखने के लिए सबसे अहम जगह इंसान का अपना घर है। बाहर लोगों के सामने नर्म लहजे में गुफ़्तगू करना आसान है लेकिन घर में इख़्तिलाफ़ के वक़्त सब्र करना, गुस्से के बावजूद ज़बान पर क़ाबू रखना, छोटों से मुहब्बत और बड़ों का एहतराम करना अस्ल अख़्लाक़ है।

एक शख़्स मस्जिद में इंतिहाई खुशू के साथ नमाज़ पढ़ता है लेकिन घर पहुँचकर मामूली बात पर गुस्से में आ जाता है। वह सदक़ात देता है मगर अपने ज़ेरे–किफ़ालत अफ़राद के हुक़ूक़ में कोताही करता है। वह दीनी मजालिस में अख़्लाक़–ए–नबवी (स0अ0व0) के वाक़्यात बयान करता है मगर अपने मामलात में सख़्त–मिज़ाज है, यह वह मक़ाम है जहाँ हमें अपने आप से सवाल करना चाहिए कि हमारी इबादत हमारे अख़्लाक़ को कितना बदल रही है।

इख़्लास व अख़्लाक़ के माबैन इस अदमे–तवाज़ुन का एक बुनियादी इलाज यह है कि हम दीन को उसकी जामेअ सूरत में समझें। इबादत को अख़्लाक़ से अलग न करें और अख़्लाक़ को इबादत का मुतबादिल न बनाएँ।

हम रोज़ाना अपना जायज़ा लें कि क्या हमारी इबादत ने हमारे अंदर आजिज़ी पैदा की? हमारे इल्म ने हमें मुतवाज़े बनाया? हमारी नमाज़ ने हमें दूसरों के हुक़ूक़ अदा करने के क़ाबिल बनाया? हमारे ज़िक्र ने हमारी ज़बान को ग़ीबत, तअन व तश्नीअ और बदकलामी से महफ़ूज़ किया? हमारी दीनी मसरूफ़ियात के साथ हमारे घरवाले भी हमारे हुस्ने–अख़लाक़ से फ़ैज़याब हो रहे हैं?! वग़ैरह।

सच्ची बात यह है कि अगर इन सवालात के जवाबात हमें मुतमईन नहीं करते तो बिला शुब्हा हमें अपनी इस्लाह की ज़रूरत है।

रसूलुल्लाह (स0अ0व0) की सीरते–तैय्यिबा हमारे लिए इस तवाज़ुन की बेहतरीन मिसाल है। आप (स0अ0व0) इबादत में सबसे आगे थे और अख़्लाक़ में भी सबसे बुलंद, अल्लाह के सामने सबसे ज़्यादा झुकने वाले थे और अल्लाह के बंदों के साथ सबसे ज़्यादा रहमत व शफ़क़त करने वाले भी। यही वह जामेअ शख़्सियत है जिसे इस्लाम हमारे सामने नमूना बनाकर पेश करता है।

आज हमें ऐसी दीनदारी की ज़रूरत है जो मस्जिद में इबादतगुज़ार, घर में शफ़ीक़, बाज़ार में दियानतदार, इख़्तिलाफ़ में बावक़ार, कमज़ोरों के लिए रहीम और तन्हाई में मुख़्लिस हो।

दाई–ए–इस्लाम के उपदेश

दुआ और ईसाल–ए–सवाब का फ़ायदाः

फ़रमायाः "दूसरों के हक़ में दुआ करने और वह लोग जो इस दुनिया से जा चुके हैं, उनके लिए ईसाल–ए–सवाब करने के बड़े फ़ायदे हैं। दूसरों के लिए दुआ करने का एक फ़ायदा यह है कि वह दुआ करने वाले के हक़ में भी क़ुबूल होती है और ईसाल–ए–सवाब का फ़ायदा यह है कि जिसके लिए ईसाल–ए–सवाब किया जाए। उसके कमालात ख़ुद उसको भी अल्लाह तआला की तरफ़ से हासिल होंगे।"

बुरी सोहबत और हराम माल का अंजामः

फ़रमायाः "गंदे लोगों की सोहबत और हराम माल खाने से इंसान की तबीयत में गंदगी व ग़िलाज़त पैदा होती है।"

रूह और जिस्म का तक़ाज़ाः

फ़रमायाः "रूह और जिस्म दोनों अलग हैं और दोनों के तक़ाज़े भी बिल्कुल अलग हैं। जब बच्चा पैदा होता है तो बाक़ायदा एक ही वक़्त में उसकी रूह और जिस्म दोनों प्यासे होते हैं और बर–वक़्त इन दोनों तक़ाज़ों को पूरा किया जाता है। रूह की प्यास अज़ान और तक्बीर से बुझती है, जबकि जिस्म की प्यास माँ के दूध से पूरी होती है। इससे यह बात समझ में आती है कि हर इंसान को अपनी पूरी ज़िंदगी में रूह और जिस्म के दरमियान इस तवाज़ुन को बरक़रार रखना चाहिए। अगर जिस्म का तक़ाज़ा पूरा न किया तो वह लाग़र हो जाएगा और बीमारियों का शिकार होगा। इसी तरह अगर रूह की फ़िक्र न की गई तो बुरी चीज़ें अच्छी मालूम होंगी और आदमी ग़लत रुख़ की तरफ़ चला जाएगा।"

हसद के मफ़ासिदः

फ़रमायाः "हसद तमाम बुराइयों की जड़ है। इसका सबसे बड़ा नुक़सान यह है कि जो आदमी इस बीमारी का शिकार हो जाए, वह तबाह व बरबाद हो जाता है और हर वक़्त परेशानी व उलझन में रहता है। यही वह मोहलिक मर्ज़ है जिसने इब्लीस को मलऊन व मरदूद बनाया और उसे जन्नत से बाहर निकाल दिया। हासिद अपने हसद से दूसरों को नुक़सान पहुँचाना चाहता है, लेकिन इसका लाज़िमी नतीजा यह निकलता है कि वह ख़ुद बर्बाद होता जाता है। इसके बरअक्स जिससे हसद किया जाता है, वह मज़ीद तरक़्क़ी करता चला जाता है। ध्यान रहे कि अगर किसी के अंदर महज़ ख़्याल की हद तक हसद की कैफ़ियत पैदा हो तो उस पर पकड़ नहीं, ताहम ज़रूरी है कि आदमी ऐसे ख़्यालात को अपने ज़ेहन व दिमाग़ में इकट्ठा न करे, बल्कि उनको ज़्यादा से ज़्यादा दूर करने की कोशिश करे।"

ईमान का तक़ाज़ाः

फ़रमायाः "बेशक बुलंद–हिम्मती ईमान का हिस्सा है।" अगर कोई साहिब–ए–ईमान बुलंद–हिम्मती के साथ सही और हलाल रास्ता इख़्तियार करता है तो वह बतदरीज तरक़्क़ी करता चला जाएगा, लेकिन अगर वह सिरात–ए–मुस्तक़ीम से हटकर बेराह–रवी का रास्ता अपनाएगा तो दुनिया व आख़िरत दोनों जगह नाकाम होगा। इसलिए ईमानी तक़ाज़ों को मद्देनज़र रखकर ज़िंदगी गुज़ारने की कोशिश करनी चाहिए।"

कामयाबी की शर्तः

फ़रमायाः "कामयाबी के लिए शर्त है कि आदमी हर काम अल्लाह के लिए करने वाला बन जाए और पूरी जाँफ़िशानी के साथ अमल करे। अल्लाह का वादा है कि वह सिफ़त–ए–एहसान के साथ काम करने वालों के लिए रास्ते ज़रूर खोलता है।"

ज़ब्त–ओ–पेशकशः मुहम्मद अज़ीमुद्दीन नदवी

हज़रत मौलाना सैय्यद अब्दुल्लाह हसनी नदवी (रह०)

R.N.I. No.
UPHIN/2009/30527

Monthly
ARAFAT KIRAN
Raebareli

Issue: 10 ❁ October 2026 ❁ Volume: 18

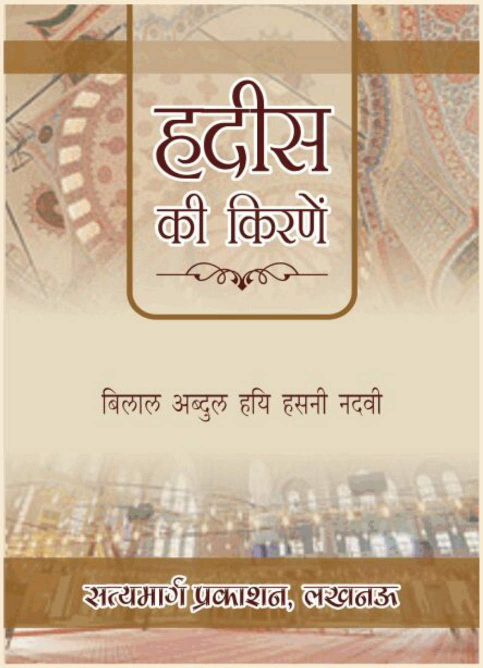

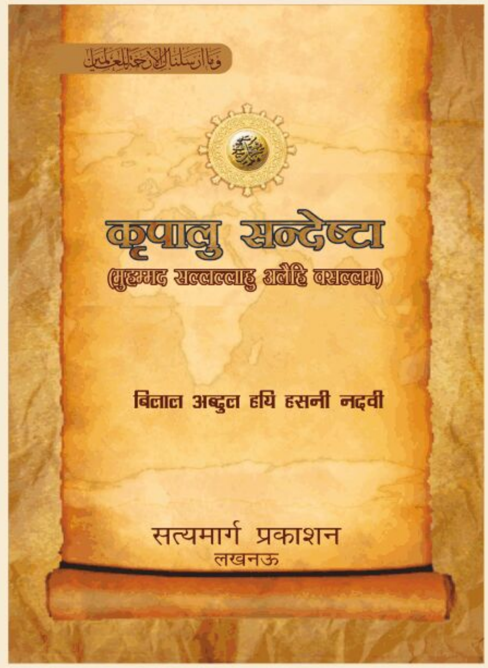

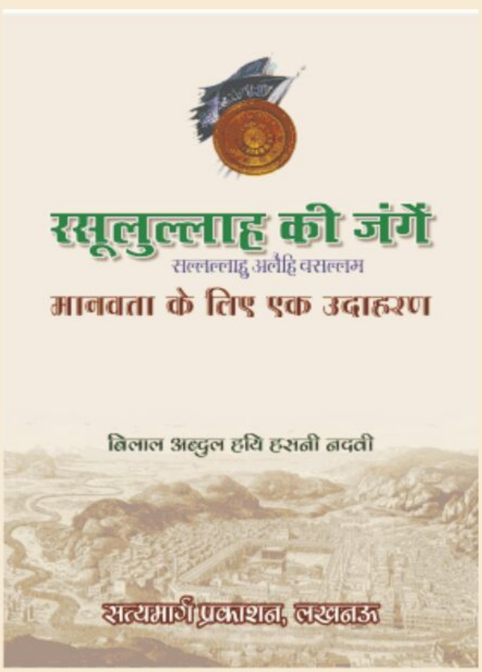

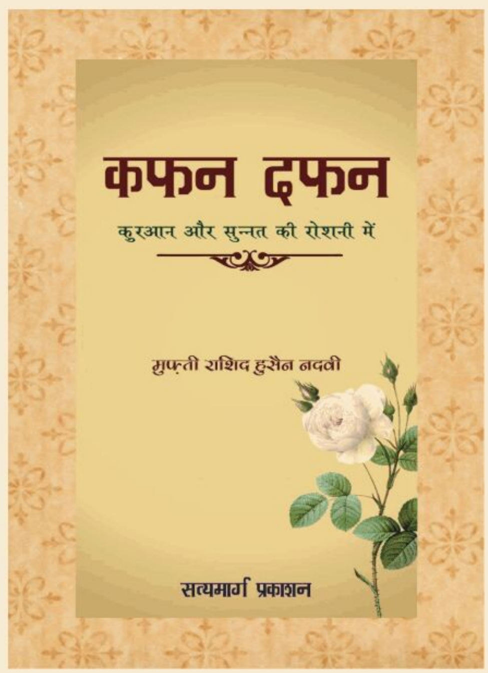

Editor: Bilal Abdul Hai Hasani Nadwi
MARKAZUL IMAM ABIL HASAN AL-NADWI
Dare Arafat, Takiya Kalan, Raebareli, U.P.
Mobile:9565271812
E-Mail: markazulimam@gmail.com
www.abulhasanalinadwi.org

Printed & Published by: Mohammad Hasan Nadwi
On Behalf of: Markazul Imam Abil Hasan Al-Nadwi
Printed at S.A. Offset Printers, Masjid ke peeche,Phatak
Abdullah Khan, Sabzi Mandi, Station Road, Raebareli, U.P.